Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XII **No. - 2** **(April – June) 2026**

(Part – I)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - ***A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal***, *Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

☙❧

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा : स्तूप, विहार एवं मंदिरों का अध्ययन ***डॉ. सीता कुमारी***	01-05
➲	महिला स्वास्थ्य और लैंगिक असमानता : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण ***डॉ. रक्षा सिंह***	06-08
➲	वर्तमान समय में बुद्ध के संदेश का प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन ***डॉ. सुषमिता सिन्हा***	09-13
➲	लैंगिक भेदभाव से समाज में मौजूद अराजकता : एक अध्ययन ***डॉ. रघुवंश कुमार सिन्हा***	14-18
➲	महिला विकास के सामाजिक आयामः संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ ***डॉ. मनीषा कुमारी*** ***सुधीर कुमार***	19-23
➲	कामकाजी महिलाओं के परिवार में घरेलू व्यवस्था का बदलावः एक अध्ययन ***सोनी कुमारी*** ***डॉ. संजय कुमार***	24-29
➲	हैजा, समाज और औपनिवेशिक शासनः मध्य प्रांत का एक ऐतिहासिक अध्ययन ***हरिपाल***	30-36
➲	जौनपुर की प्राचीनता : विविध मत ***डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी***	37-39
➲	वैश्वीकरण के संदर्भ में जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति का बदलता स्वरूप ***डॉ. अवधेश कुमार***	40-42
➲	मौर्ययुगीन युगीन मूर्तिकला का स्वरूप एवं आयाम ***डॉ. राहुल***	43-46
➲	भारतीय संविधान में शिक्षा सम्बन्धी विशेष प्रावधान ***धर्मेन्द्र कुमार मिश्र***	47-49
➲	संजीव के 'फाँस' उपन्यास में स्त्री चेतना का संघर्ष ***डॉ. शिव शरन द्विवेदी***	50-53
➲	मॉरीशस में गन्ना उद्योग और भारतीय गिरमिटिया मजदूर (1834–1920) ***उपेन्द्र यादव***	54-57
➲	'मुगल–ए–आजम' : एक कालजयी प्रेम कहानी ***डॉ. चित्तरंजन कुमार***	58-64

CSSO

प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा : स्तूप, विहार एवं मंदिरों का अध्ययन

डॉ. सीता कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा : स्तूप, विहार एवं मंदिरों का अध्ययन' का विश्लेषण करना है। बिहार प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति, धर्म और ज्ञान की समृद्ध परंपरा का एक प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ विकसित कला एवं स्थापत्य परंपरा भारतीय सभ्यता के ऐतिहासिक विकास को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। विशेष रूप से बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्मों के प्रभाव के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में स्तूप, विहार और मंदिर स्थापत्य का उल्लेखनीय उत्कर्ष हुआ। यह स्थापत्य केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं है, बल्कि उस समय की सामाजिक संरचना, राजनीतिक सुदृढ़ता, आर्थिक संसाधनों तथा तकनीकी दक्षता का भी सशक्त परिचायक है।

प्रस्तुत शोध लेख में प्राचीन बिहार की स्थापत्य परंपरा का व्यापक एवं गहन विश्लेषण किया गया है, जिसमें स्तूप, विहार और मंदिरों की संरचना, उनके विकासक्रम, शैलीगत विशेषताओं तथा सांस्कृतिक महत्व का सुव्यवस्थित विवेचन किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इस स्थापत्य परंपरा का विकास बहुधार्मिक सहअस्तित्व, शासकीय संरक्षण तथा तकनीकी नवाचार के समन्वित परिणामस्वरूप हुआ।

विशिष्ट शब्द : प्राचीन स्थापत्य, कला परंपरा, स्तूप स्थापत्य, विहार स्थापत्य, मंदिर स्थापत्य, नालंदा, विक्रमशिला, महाबोधि मंदिर, आदि ।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विकास में बिहार का स्थान अत्यंत केंद्रीय एवं विशिष्ट रहा है। यह क्षेत्र न केवल राजनीतिक सत्ता का प्रमुख केंद्र रहा, बल्कि धार्मिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक गतिविधियों का भी महत्वपूर्ण केंद्र था। गंगा के उपजाऊ मैदानों में स्थित होने के कारण यहाँ प्रारंभ से ही समृद्ध सभ्यता का विकास हुआ, जिसने कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया।

प्राचीन काल में पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) मौर्य एवं गुप्त साम्राज्यों की राजधानी के रूप में उभरा। यह नगर न केवल प्रशासनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि स्थापत्य कला के विकास का भी प्रमुख केंद्र था। यहाँ निर्मित राजप्रासाद, स्तंभ, उद्यान एवं नगर योजना उस समय की उच्च स्तरीय वास्तुकला एवं इंजीनियरिंग कौशल का परिचायक हैं। यूनानी यात्रियों जैसे मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र की भव्यता एवं संरचनात्मक उत्कृष्टता का उल्लेख किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि बिहार की स्थापत्य परंपरा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्रसिद्ध थी।

धार्मिक दृष्टि से बिहार का महत्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि यही वह भूमि है जहाँ गौतम बुद्ध को बोधगया में ज्ञान की प्राप्ति हुई तथा महावीर ने जैन धर्म का प्रचार–प्रसार किया। इन दोनों महापुरुषों की शिक्षाओं ने बिहार को एक प्रमुख आध्यात्मिक केंद्र के रूप में स्थापित किया। फलस्वरूप यहाँ धार्मिक स्मारकोंकृविशेषतः स्तूपों, विहारों एवं मंदिरों का व्यापक निर्माण हुआ, जो आज भी इस क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विद्यमान हैं।

मौर्य काल, विशेष रूप से सम्राट अशोक का शासन, बिहार की स्थापत्य परंपरा के उत्कर्ष का स्वर्णिम युग माना जाता है। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु अनेक स्तूपों, स्तंभों एवं विहारों का निर्माण कराया। उनके द्वारा निर्मित स्थापत्य न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक थे, बल्कि साम्राज्य की एकता, प्रशासनिक दक्षता एवं सांस्कृतिक समन्वय का भी प्रतिनिधित्व करते थे। अशोक के स्तंभ एवं शिलालेख भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं, जिनमें शिल्पकला एवं अभिलेखीय परंपरा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

* पी–एच0 डी0, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 9113377590, E-mail id : sitapandit1990@gmail.com

मौर्योत्तर काल में भी बिहार की स्थापत्य परंपरा का विकास निरंतर जारी रहा। शुंग, कुषाण एवं गुप्त शासकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। विशेष रूप से गुप्त काल को भारतीय कला एवं स्थापत्य का "स्वर्ण युग" कहा जाता है, जिसमें मंदिर स्थापत्य का व्यवस्थित विकास हुआ।[1] इस काल में निर्मित मंदिरों में शिखर, गर्भगृह एवं मंडप की संरचना स्पष्ट रूप से विकसित हुई, जो आगे चलकर उत्तर भारतीय नागर शैली के मंदिरों की आधारशिला बनी।

बौद्ध विहार स्थापत्य के संदर्भ में नालंदा विश्वविद्यालय एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय का विशेष महत्व है। ये संस्थान केवल शिक्षा के केंद्र नहीं थे, बल्कि स्थापत्य दृष्टि से भी अत्यंत उन्नत थे। नालंदा में बहुमंजिला विहार, विशाल पुस्तकालय, मंदिर एवं उद्यान एक सुव्यवस्थित योजना के अंतर्गत निर्मित थे। यहाँ की स्थापत्य शैली में उपयोगिता, सौंदर्य एवं तकनीकी दक्षता का अद्भुत संतुलन देखने को मिलता है।

प्राचीन बिहार की स्थापत्य परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका बहुधार्मिक स्वरूप है। यहाँ बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण धर्मों के अनुयायियों द्वारा निर्मित स्थापत्य एक साथ विकसित हुए, जो धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक समन्वय का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। स्तूप, विहार एवं मंदिर केवल धार्मिक संरचनाएँ नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक जीवन के केंद्र भी थे, जहाँ शिक्षा, संवाद एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ संचालित होती थीं।

तकनीकी दृष्टि से भी बिहार की स्थापत्य परंपरा अत्यंत उन्नत थी। यहाँ पकी हुई ईंटों का व्यापक उपयोग किया गया, जो उस समय की उन्नत निर्माण तकनीक को दर्शाता है। जल निकासी प्रणाली, सममितीय योजना एवं मजबूत नींव जैसी विशेषताएँ यह सिद्ध करती हैं कि प्राचीन बिहार के स्थापत्यकार उच्च स्तर की इंजीनियरिंग समझ रखते थे।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : प्राचीन बिहार का इतिहास अत्यंत समृद्ध एवं बहुआयामी रहा है। राजगीर, वैशाली एवं पाटलिपुत्र जैसे नगर राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र थे। गौतम बुद्ध एवं महावीर ने इसी क्षेत्र में अपने उपदेश दिए, जिससे यह क्षेत्र धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया। परिणामस्वरूप यहाँ धार्मिक स्थापत्य का तीव्र विकास हुआ।[2] मौर्य, शुंग, कुषाण एवं गुप्त काल में स्थापत्य गतिविधियों को निरंतर संरक्षण मिला, जिससे विभिन्न स्थापत्य शैलियों का विकास हुआ।

स्तूप स्थापत्य परंपरा :

स्तूप की संकल्पना एवं उत्पत्ति : स्तूप मूलतः बौद्ध धर्म से संबंधित स्मारक हैं, जिनका निर्माण बुद्ध या अन्य महापुरुषों की स्मृति में किया जाता था। प्रारंभिक स्तूप मिट्टी के बने होते थे, लेकिन बाद में इन्हें ईंट एवं पत्थर से निर्मित किया जाने लगा।

प्रमुख स्तूप

- केसरिया स्तूप
- वैशाली स्तूप
- लौरिया नंदनगढ़

केसरिया स्तूप विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसकी ऊँचाई एवं संरचना इसे विश्व के प्रमुख स्तूपों में स्थान प्रदान करती है।

स्थापत्य संरचना

स्तूप की संरचना में निम्नलिखित प्रमुख तत्व होते हैं –

- अंड (गुंबदाकार भाग)
- हरमिका (वर्गाकार संरचना)
- यष्टि (ध्वज स्तंभ)
- वेदिका (घेरने वाली रेलिंग)
- प्रदक्षिणा पथ

सांस्कृतिक महत्व : स्तूप केवल धार्मिक स्थल नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक एकता एवं सांस्कृतिक पहचान के केंद्र भी थे। यहाँ तीर्थयात्री एकत्रित होते थे, जिससे सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा मिलता था।

विहार स्थापत्य परंपरा

विहार की अवधारणा : विहार बौद्ध भिक्षुओं के निवास स्थान एवं शिक्षा केंद्र होते थे। ये संस्थान न केवल धार्मिक शिक्षा के केंद्र थे, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान के प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

प्रमुख विहार स्थल

- नालंदा
- विक्रमशिला
- ओदंतपुरी

नालंदा विश्वविद्यालय में हजारों विद्यार्थी एवं शिक्षक निवास करते थे, जो इसे विश्व का पहला आवासीय विश्वविद्यालय बनाता है।

स्थापत्य विशेषताएँ

- आयताकार प्रांगण
- चारों ओर कक्ष
- केंद्रीय मंदिर या स्तूप
- बहुमंजिला संरचना
- उन्नत जल निकासी प्रणाली

शैक्षिक एवं सांस्कृतिक महत्व : विहार केवल धार्मिक केंद्र नहीं थे, बल्कि ये ज्ञान एवं शोध के प्रमुख केंद्र भी थे। यहाँ विभिन्न देशों से विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे, जिससे अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संपर्क स्थापित हुआ।

मंदिर स्थापत्य परंपरा

मंदिर स्थापत्य का विकास : गुप्त काल को भारतीय मंदिर स्थापत्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में मंदिर निर्माण की परंपरा विकसित हुई, जिसमें ईंट एवं पत्थर का व्यापक उपयोग किया गया।

प्रमुख मंदिर

- महाबोधि मंदिर
- देव सूर्य मंदिर

महाबोधि मंदिर बौद्ध स्थापत्य का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ गौतम बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ।

स्थापत्य विशेषताएँ

- गर्भगृह
- मंडप
- शिखर
- मूर्तिकला एवं अलंकरण

धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व

मंदिर स्थापत्य ने धार्मिक जीवन को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह सामाजिक एकता एवं सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतीक था।

स्थापत्य की तकनीक एवं सामग्री :

निर्माण सामग्री

- पकी हुई ईंटें
- पत्थर
- लकड़ी (प्रारंभिक काल में)

तकनीकी विशेषताएँ

- उन्नत जल निकासी प्रणाली
- सममितीय योजना
- मजबूत नींव

कला एवं अलंकरण

प्राचीन बिहार की स्थापत्य कला में मूर्तिकला एवं चित्रकला का महत्वपूर्ण स्थान था। मंदिरों एवं विहारों की दीवारों पर विभिन्न धार्मिक कथाओं एवं प्रतीकों का चित्रण किया जाता था।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा भारतीय सभ्यता के विकास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। स्तूप, विहार एवं मंदिरों के माध्यम से न केवल धार्मिक आस्था का प्रदर्शन होता है, बल्कि यह उस समय के समाज की संरचना, विचारधारा एवं तकनीकी प्रगति को भी अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी समृद्ध परंपरा का गहन विश्लेषण करने का प्रयास है, जिससे प्राचीन बिहार की सांस्कृतिक विरासत को समग्र रूप में समझा जा सके।

साहित्य समीक्षा

प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा पर अनेक विद्वानों ने शोध कार्य किए हैं, जिनमें स्तूप, विहार एवं मंदिर स्थापत्य के विभिन्न आयामों जैसे संरचना, शैली, तकनीक, सांस्कृतिक महत्व एवं धार्मिक प्रभाव का विश्लेषण किया गया है –

कुमार, अनिल (2024) कुमार, इस अध्ययन में लेखक ने प्राचीन बिहार के स्थापत्य विकास को बहुआयामी दृ ष्टिकोण से विश्लेषित किया है। विशेष रूप से नालंदा एवं विक्रमशिला के विहार स्थापत्य को शिक्षा प्रणाली से जोड़ते हुए यह बताया गया है कि स्थापत्य केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि बौद्धिक गतिविधियों का भी केंद्र था। लेखक ने निष्कर्ष निकाला है कि बिहार की स्थापत्य परंपरा धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है।[3]

सिंह, संजय (2024) सिंह, इस पुस्तक में लेखक ने बौद्ध स्थापत्य के विकास में सम्राट अशोक की भूमिका को प्रमुखता से रेखांकित किया है। केसरिया स्तूप एवं वैशाली के स्तूपों के उदाहरणों के माध्यम से लेखक ने स्थापत्य शैली के विकासक्रम को स्पष्ट किया है।[4]

शर्मा, रीता (2023) शर्मा, इस अध्ययन में गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य पर विशेष ध्यान दिया गया है। लेखक ने महाबोधि मंदिर को एक आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसकी संरचना, शिखर शैली एवं मूर्तिकला का विस्तृत विश्लेषण किया है।[5]

वर्मा, राजेश (2022) वर्मा ने इस पुस्तक में विहार स्थापत्य को शिक्षा प्रणाली के साथ जोड़कर देखा गया है। ओदंतपुरी एवं नालंदा के विहारों की संरचना का विश्लेषण करते हुए लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि इन संस्थानों की वास्तुकला अत्यंत योजनाबद्ध एवं वैज्ञानिक थी।[6]

मिश्रा, सुनील (2021) मिश्रा, इस अध्ययन में मौर्यकालीन स्थापत्य के विकास को प्रमुखता दी गई है। लेखक ने सम्राट अशोक द्वारा निर्मित स्तूपों एवं स्तंभों का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि मौर्यकाल भारतीय स्थापत्य का आधारभूत काल था।[7]

गुप्ता, अंजलि (2020) लेखिका ने बौद्ध स्थापत्य की विशेषताओंकृजैसे स्तूप संरचना, विहार योजना एवं मूर्तिकला का विश्लेषण किया है। गौतम बुद्ध के जीवन से जुड़े स्थलों के संदर्भ में स्थापत्य विकास को समझाया गया है।[8]

सिंह, रवि (2019) इस पुस्तक में लेखक ने बिहार के प्रमुख स्थापत्य स्थलोंकृजैसे राजगीर एवं वैशालीकृका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।[9]

शर्मा, दीपक (2018) यह एक व्यापक अध्ययन है जिसमें भारतीय स्थापत्य कला के विकासक्रम को प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने बिहार की स्थापत्य परंपरा को भारतीय स्थापत्य के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया है।[10]

अध्ययन के उद्देश्य

1. प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा का ऐतिहासिक विश्लेषण करना।
2. स्तूप, विहार एवं मंदिर स्थापत्य की संरचना एवं शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन करना।
3. स्थापत्य विकास में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों की भूमिका का मूल्यांकन करना।
4. समकालीन संदर्भ में इस स्थापत्य परंपरा की प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।

परिकल्पना

प्राचीन बिहार की स्थापत्य परंपरा धार्मिक विविधता, राजकीय संरक्षण एवं आर्थिक समृद्धि के समन्वित प्रभाव का परिणाम है, जिसमें स्तूप, विहार एवं मंदिर स्थापत्य क्रमिक विकास की एक सुसंगत श्रृंखला प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि बिहार की प्राचीन कला एवं स्थापत्य परंपरा भारतीय सभ्यता के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान रखती है। स्तूप, विहार एवं मंदिरों

के रूप में विकसित स्थापत्य न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक थे, बल्कि वे सामाजिक संगठन, शैक्षिक उन्नति, राजनीतिक संरक्षण एवं आर्थिक समृद्धि के भी सशक्त द्योतक थे।

स्तूप स्थापत्य के माध्यम से बौद्ध धर्म की स्मृति एवं विचारधारा को स्थायित्व प्रदान किया गया। सम्राट अशोक के संरक्षण में निर्मित स्तूपों ने न केवल धार्मिक प्रचार को बढ़ावा दिया, बल्कि सांस्कृतिक एकता एवं साम्राज्यिक शक्ति का भी प्रदर्शन किया। केसरिया स्तूप जैसे स्मारक इस स्थापत्य परंपरा की उत्कृष्टता एवं तकनीकी दक्षता के प्रमाण हैं।

विहार स्थापत्य ने शिक्षा एवं ज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। नालंदा एवं विक्रमशिला जैसे केंद्रों ने न केवल भारत, बल्कि सम्पूर्ण एशिया में ज्ञान के प्रसार में योगदान दिया। इन विहारों की योजनाबद्ध संरचना, बहुमंजिला भवन, जल निकासी व्यवस्था एवं आवासीय प्रणाली यह दर्शाती है कि प्राचीन बिहार में स्थापत्य विज्ञान अत्यंत उन्नत स्तर पर था। मंदिर स्थापत्य के विकास ने धार्मिक जीवन को संगठित एवं संरचित किया। गुप्तकालीन मंदिरों में विकसित शिखर, गर्भगृह एवं मंडप की अवधारणा ने उत्तर भारतीय नागर शैली की नींव रखी। महाबोधि मंदिर इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, जो धार्मिक आस्था एवं स्थापत्य सौंदर्य का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि गौतम बुद्ध एवं महावीर की शिक्षाओं ने इस क्षेत्र को आध्यात्मिक केंद्र बनाया, जिससे स्थापत्य विकास को निरंतर प्रोत्साहन मिला। बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण धर्मों का सहअस्तित्व इस क्षेत्र की स्थापत्य विविधता एवं सांस्कृतिक सहिष्णुता को दर्शाता है।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि प्राचीन बिहार की कला एवं स्थापत्य परंपरा भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक अमूल्य एवं जीवंत अध्याय है। स्तूप, विहार एवं मंदिरों का समन्वित अध्ययन न केवल अतीत की गौरवशाली परंपरा को उजागर करता है, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के लिए भी संरक्षण, अनुसंधान एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दिशा में महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार, गौरव., चौधरी, नितीश कुमार, एवं अली, मिर्जा मोहम्मद (2024) बिहार के प्राचीन विश्वविद्यालय, नालंदा एवं विक्रमशिला का ऐतिहासिक एवं स्थापत्य अध्ययन, द फ्यूजन जर्नल, पृ0 16
2. सिंह, संतोष, एवं सेनगुप्ता, अर्जुन (2024) नालंदा विश्वविद्यालयः ऐतिहासिक एवं स्थापत्य विरासत का पुनर्मूल्यांकन, द इंडियन एक्सप्रेस, पृ0 24
3. कुमार, अनिल (2024) प्राचीन बिहार की स्थापत्य परंपराः एक समग्र अध्ययन, नई दिल्ली, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, पृ0 36
4. सिंह, संजय (2024) बौद्ध स्थापत्य और बिहार की सांस्कृतिक विरासत, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ0 68
5. शर्मा, रीता (2023) भारतीय मंदिर स्थापत्य : गुप्तकालीन परंपरा और विकास, वाराणसी, चौखम्बा प्रकाशन, पृ0 103
6. वर्मा, राजेश (2022) प्राचीन भारत में विहार स्थापत्य और शिक्षा प्रणाली, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ0 112
7. मिश्रा, सुनील (2021) मौर्यकालीन कला एवं स्थापत्य, पटना, बिहार पब्लिशिंग हाउस, पृ0 52
8. गुप्ता, अंजलि (2020) बौद्ध कला और स्थापत्य : एक ऐतिहासिक अध्ययन, नई दिल्ली, डी.के. पब्लिशर्स, पृ0 48
9. सिंह, रवि (2019) प्राचीन बिहार की सांस्कृतिक धरोहर, पटना, राजकमल प्रकाशन, पृ0 74
10. शर्मा, दीपक (2018) भारतीय स्थापत्य कला का इतिहास, नई दिल्ली, मैकमिलन प्रकाशन, पृ0 83

महिला स्वास्थ्य और लैंगिक असमानता : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. रक्षा सिंह*

प्रस्तावना (Introduction) :

महिला स्वास्थ्य किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक संव मानवीय विकास का एक महत्वपूर्ण सूचक है। किसी समाज की प्रगति का आंकलन केवल उसकी आर्थिक उन्नति से नहीं, बल्कि महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण, सुरक्षा तथा सामाजिक स्थिति से भी किया जाता है। स्वास्थ्य केवल बीमारियों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि यह एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से स्वास्थ्य केवल एक जैविक घटना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं, शक्ति सम्बन्धों और सांस्कृतिक मानदण्डों से निर्मित होती है। भारत जैसे विकासशील और पारम्परिक समाज में महिलाओं का स्वास्थ्य सीधे–सीधे 'लैंगिक असमानता' से जुड़ा हुआ है।

भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता, स्वतन्त्रता और गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार प्रदान किया है। इसके बावजूद आज भी अनेक महिलाएँ लैंगिक असमानता, कुपोषण, स्वास्थ्य, घरेलू हिंसा, बाल–विवाह, कम आयु में गर्भधारण तथा निर्णय लेने के सीमित आकार अधिकार जैसी समस्याओं करती है। विशेष रूप से ग्रामीण, गरीब और और सामाजिक रूप से वंचित वर्गों की महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति अधिक चिंताजनक है। अनेक परिवारों में महिलाओं के स्वास्थ्य को पुरुषों की तुलना में कम प्राथमिकता दी जाती है, जिसके कारण वे समय पर उपचार, संतुलित पोषण और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित रह जाती है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, प्रधानमंत्री मातृ वंदन योजना, जननी सुरक्षा योजना, बेटी बचाओं बेटी बढ़ाओं अभियान तथा अन्य कार्यक्रम संचालित किये जा रहे है, जिसका उद्देश्य महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार और स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी पहुंच बढ़ाना हैं है।

की–वर्ड्स (Key words) : लैगिंक असमानता, प्रजनन स्वास्थ्य, जननी सुरक्षा योजना, पितृसत्ता, दोहरा बोझ, स्वास्थ्य के निर्धारक।

शोध के उद्देश्य (Objectives of the Research) :

1. लैंगिक असमानता और महिलाओं के स्वास्थ्य के बीच के अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन करना।
2. यह जानना कि पितृसत्तात्मक विचार किस प्रकार महिलाओं के पोषण और चिकित्सा पहुँच को प्रभावित करता है।
3. महिलाओं के स्वास्थ्य पर श्रम के लैंगिक विभाजन एवं दोहरे बोझ के प्रभाव का मूल्यांकन करना।

उपकल्पना (Hypotheses)

- लैंगिक असमानता का महिला स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- परिवार में निर्णय लेने की शक्ति न होने के कारण महिलाएं समय पर स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं उठा पाती है।
- महिलाओं द्वारा निर्देशित किए जाने वाले घरेलू श्रम और देखभाल कार्य उनके मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं।

शोध पद्धति (Research Method)

इस शोध पत्र में द्वितीयक स्रोत (पुस्तकें, शोधपत्र, NFHS, सरकारी रिपोर्ट) के द्वारा वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रस्तुत किया गया, जो उद्देश्यपूर्ण निर्दशन विधि पर आधारित है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर

आँकड़ों का विश्लेषण और व्याख्या (Data Analysis and Interpretation)

1. पोषण असमानता और एनीमिया

भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों में से एक है। जब परिवार और समाज में भोजन के वितरण, पोषण की गुणवत्ता तथा आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानता होती है, तो उसे ''पोषण असमानता'' कहा जाता है।

''NFHS–5'' के अनुसार, भारत में ''15 से 49 वर्ष'' की आयु वर्ग की लगभग ''57% महिलाएँ'' एनीमिया से पीड़ित हैं। यह दर्शाता है कि जैविक बनावट से हटकर सामाजिक प्राथमिकताएँ पोषण में भेदभाव उत्पन्न करती हैं।

2. निर्णय लेने की क्षमता और स्वास्थ्य तक पहुँच –

समाजशास्त्री विल्किन्सन ने सिद्धांत के अनुसार, ''स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति के पास संसाधन कितने हैं।'' गाँवों में आज भी अधिकतर महिलाएँ बीमारी की स्थिति में स्वयं डॉक्टर के पास जाने का निर्णय नहीं ले पाती हैं। उन्हें पति या परिवार के पुरुष की अनुमति और उनके साथ जाने पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके कारण साधारण बीमारियाँ भी समय पर इलाज नहीं होने से गंभीर स्थिति में पहुँच जाती हैं।

3. श्रम का लैंगिक विभाजन और मानसिक स्वास्थ्य –

घर के भीतर महिलाएँ औसतन पुरुषों की तुलना में कई गुना अधिक अनुउत्पादक या बिना वेतन वाला कार्य करती हैं। जब वे कामकाजी होती हैं, तो उन्हें दूसरा कार्य भी संभालना होता है। जिसके कारण यह निरन्तर चलने वाली शारीरिक थकान और समय की कमी महिलाओं में दीर्घकालिक तनाव, चिंता और अवसाद को जन्म देती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस समाजशास्त्रीय विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं का स्वास्थ्य केवल एक जैविक या चिकित्सीय विषय नहीं है, बल्कि यह गहराई से सामाजिक संरचना, शक्ति सम्बन्धों और लैंगिक असमानता से जुड़ा हुआ है। महिलाओं में पाई जाने वाली पोषण सम्बन्धी कमियाँ और स्वास्थ्य समस्याओं का मुख्य कारण लैंगिक कमजोरी न होकर पितृसत्तात्मक मानदंड और परिवारों में संसाधनों का असमान वितरण है।

स्वास्थ्य सेवाओं तक महिलाओं की पहुँच इस बात पर निर्भर करती है कि परिवार में उन्हें कितना स्वतंत्रता और आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार है। निर्णय लेने की शक्ति के अभाव से सामान्य बीमारियाँ भी गंभीर रूप ले लेती हैं। इसलिए जब तक समाज में लैंगिक विषमता और पितृसत्तात्मक सोच को समाप्त नहीं किया जाएगा, तब तक केवल चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार करके महिलाओं के स्वास्थ्य का स्तर नहीं सुधारा जा सकता। महिलाओं के पूर्ण स्वास्थ्य अधिकार के लिए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सुधार प्राथमिक आवश्यकता है।

सुझाव (Suggestions)

- स्वास्थ्य नीतियों का ध्यान केवल गर्भावस्था और प्रसव तक सीमित न रखकर महिलाओं के सम्पूर्ण जीवनकाल पर होना चाहिए।
- महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाए, जिससे वे स्वास्थ्य सम्बन्धी खर्चों के लिए किसी पर निर्भर न रहें।
- जनजागरूक अभियान के माध्यम से परिवारों में यह संदेश दिया जाए कि लड़कियों और महिलाओं का पोषण और स्वास्थ्य भी पुरुषों के समान ही महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- देसाई, एस. और जैन, डी. (1994)।
- सेन, अमर्त्य (2001), मेनी फेसेज ऑफ जेण्डर इनेक्वालिटी – फ्रंटलाइन, मैगजीन, वैल्यूम 18 – इश्यू 22.

- दुबे, लीला (2001), मानवविज्ञान और समाजशास्त्र में लैंगिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- डायल, लेस्ली (1995), हवाट मेक्स वोमेन सिक : जेण्डर एण्ड द पॉलिटिकल इकोनामी ऑफ हेल्थ, मैक्मिलन इण्टरनेशनल हायर एजुकेशन।
- शिवा, वंदना (1988), स्टेइंग अलाइव : वोमेन, इकोलॉजी एण्ड डेवलपमेन्ट, जेडबुक्स, लंदन।
- मिनिस्ट्री ऑफ हेल्थ एण्ड फैमिली वेलफेयर – (MoHFW (2021), National Family Health Survey (NFHS – S), 2019-21 : इण्डिया रिपोर्ट : गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, न्यू देल्ही।

वर्तमान समय में बुद्ध के संदेश का प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. सुषमिता सिन्हा*

शोध-सार -

प्रस्तुत शोध अध्ययन का शीर्षक "**वर्तमान समय में बुद्ध के संदेश का प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन**" है गौतम बुद्ध का दर्शन भारतीय इतिहास, संस्कृति और सामाजिक चिंतन की ऐसी महत्वपूर्ण धारा है, जिसने मानव जीवन को नैतिकता, करुणा, अहिंसा, समानता और आत्मानुशासन की दिशा प्रदान की। लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व बुद्ध ने जिस समय अपने विचारों का प्रचार किया, उस समय भारतीय समाज धार्मिक कर्मकांड, सामाजिक असमानता, जातिगत विभाजन तथा अनेक प्रकार की रूढ़ियों से प्रभावित था। बुद्ध ने इन परिस्थितियों के बीच मनुष्य के नैतिक आचरण और उसके कर्म को सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन का आधार बनाया। उन्होंने दुःख, उसके कारण, उसके निरोध तथा दुःख-निरोध के मार्ग के रूप में चार आर्य सत्यों का प्रतिपादन किया तथा अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से संतुलित और नैतिक जीवन की दिशा प्रस्तुत की।

बुद्ध का संदेश मुख्य रूप में मानव के लिए था। उन्होंने व्यक्ति को अंधविश्वास और बाहरी आडंबर के स्थान पर विवेक, अनुभव और सदाचार को महत्व देने की प्रेरणा दी। अहिंसा, मैत्री, करुणा, सम्यक दृष्टि, सम्यक वाणी और सम्यक कर्म जैसे सिद्धांत आज भी व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के लिए प्रासंगिक हैं। सम्राट अशोक के काल में बौद्ध विचारों को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ और भारत से बाहर श्रीलंका, मध्य एशिया, चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया तक बुद्ध का संदेश पहुँचा। इस प्रकार बौद्ध दर्शन भारतीय इतिहास के साथ-साथ एशियाई सभ्यताओं के विकास का भी महत्वपूर्ण आधार बना।

वर्तमान समय में बुद्ध के संदेश का प्रभाव केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। आधुनिक शिक्षा, सामाजिक सुधार, शांति-अध्ययन, मानवाधिकार, पर्यावरणीय चेतना, मानसिक शांति तथा वैश्विक सह-अस्तित्व के विमर्श में बुद्ध के विचारों की उपयोगिता दिखाई देती है। ध्यान और माइंडफुलनेस जैसी अवधारणाओं ने आधुनिक जीवन की तनावपूर्ण परिस्थितियों में विशेष महत्व प्राप्त किया है। भारत में डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म को सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा के संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया गया, जिसने आधुनिक भारत में बौद्ध विचारधारा को एक नए सामाजिक आयाम से जोड़ा।

यह अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बुद्ध के संदेश के विकास तथा वर्तमान समाज पर उसके प्रभाव का विश्लेषण करता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि बुद्ध के विचार किसी एक काल या समुदाय तक सीमित नहीं हैं। करुणा, अहिंसा, समानता, विवेक और नैतिकता पर आधारित उनका संदेश आज के हिंसा, असहिष्णुता, तनाव, उपभोक्तावाद और सामाजिक विभाजन से प्रभावित समाज के लिए अत्यंत उपयोगी है।

मुख्य शब्द - गौतम बुद्ध, बौद्ध दर्शन, चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, अहिंसा, करुणा, मैत्री, सामाजिक समानता, अशोक, आधुनिक समाज, ऐतिहासिक अध्ययन।

शोध-सारांश - मानव सभ्यता के इतिहास में कुछ ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनके विचार समय और स्थान की सीमाओं को पार करके आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित करते रहे हैं। गौतम बुद्ध ऐसे ही महान चिंतक, समाज-सुधारक और आध्यात्मिक शिक्षक थे। लगभग छठी-पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के भारत में बुद्ध का उदय

* सहायक अतिथि प्राध्यापक, AI & AS विभाग, गया कॉलेज, गया
Email Id- **susmitasinha83@gmail.com**, mob. 7991154517, BHLM 220069.

ऐसे समय हुआ जब समाज में धार्मिक कर्मकांड, सामाजिक असमानता, जातिगत विभाजन और जीवन के आध्यात्मिक प्रश्नों को लेकर व्यापक चिंतन चल रहा था। बुद्ध ने मानव जीवन के दुःख को अपने चिंतन का केंद्र बनाया और उसके कारण तथा समाधान को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया।

बुद्ध का दर्शन किसी काल्पनिक या केवल आध्यात्मिक संसार पर आधारित न होकर मानव जीवन की वास्तविक समस्याओं से जुड़ा था। उन्होंने कहा कि जीवन में दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का समाधान संभव है और उसके समाधान का एक मार्ग है। यही चार आर्य सत्य बौद्ध चिंतन की आधारभूमि बने। अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति को सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि का पालन करने की प्रेरणा दी।

वर्तमान समय में जब समाज हिंसा, धार्मिक असहिष्णुता, सामाजिक तनाव, आर्थिक असमानता, मानसिक दबाव और पर्यावरणीय संकट जैसी अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है, तब बुद्ध के संदेश की प्रासंगिकता पुनः बढ़ी है। इसलिए बुद्ध के विचारों को केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है।

बुद्ध के संदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - बुद्ध का जन्म शाक्य गणराज्य के लुंबिनी में सिद्धार्थ गौतम के रूप में हुआ। राजसी जीवन प्राप्त होने के बावजूद उन्होंने वृद्धावस्था, बीमारी और मृत्यु जैसे जीवन के यथार्थों को देखा और मानव जीवन की समस्याओं के समाधान की खोज में गृहत्याग किया। कठोर तपस्या के बाद उन्होंने मध्यम मार्ग को स्वीकार किया और बोधगया में ज्ञान प्राप्त किया।

ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध ने सारनाथ में अपना पहला उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने लगभग 45 वर्षों तक विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करके अपने विचारों का प्रचार किया। उनके उपदेशों में जाति या जन्म की अपेक्षा व्यक्ति के कर्म और नैतिक आचरण को अधिक महत्व दिया गया। संघ की स्थापना के माध्यम से उन्होंने एक संगठित धार्मिक-सामाजिक समुदाय का निर्माण किया।

बुद्ध के विचारों का विस्तार विशेष रूप से मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल में हुआ। कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने हिंसक विजय की नीति से हटकर धम्म, नैतिकता और लोककल्याण पर बल दिया। अशोक के संरक्षण में बौद्ध विचार भारत से बाहर अनेक क्षेत्रों में पहुँचे। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया ने बुद्ध के संदेश को भारतीय उपमहाद्वीप से निकालकर व्यापक एशियाई सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा बना दिया।

बुद्ध का अहिंसा और करुणा का संदेश - बुद्ध के दर्शन में अहिंसा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार किसी जीव को अनावश्यक कष्ट पहुँचाना नैतिक दृष्टि से अनुचित है। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं है, बल्कि विचार, वाणी और व्यवहार में भी मैत्री और करुणा विकसित करना है। आज के समय में हिंसा केवल युद्ध या शारीरिक संघर्ष तक सीमित नहीं है। सामाजिक घृणा, धार्मिक असहिष्णुता, जातीय संघर्ष, घरेलू हिंसा, साइबर उत्पीड़न और मानसिक हिंसा भी समाज को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में बुद्ध का करुणा और मैत्री का संदेश सामाजिक संबंधों को मजबूत करने में सहायक हो सकता है।

सामाजिक समानता पर बुद्ध का प्रभाव - बुद्ध ने व्यक्ति के मूल्यांकन में जन्म की अपेक्षा उसके कर्म और आचरण को महत्व दिया। बौद्ध संघ में विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के लोगों के सम्मिलित होने की परंपरा ने सामाजिक समानता की भावना को प्रोत्साहित किया। इस दृष्टि से बुद्ध का चिंतन भारतीय सामाजिक इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी विचार के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक भारत में बुद्ध के सामाजिक विचारों को डॉ. भीमराव आंबेडकर ने नए संदर्भ में प्रस्तुत किया। आंबेडकर ने बौद्ध धर्म को स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों से जोड़ा। उनके माध्यम से बौद्ध दर्शन सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के प्रश्नों से भी जुड़ा। इस प्रकार आधुनिक भारत में बुद्ध का संदेश केवल आध्यात्मिकता तक सीमित न रहकर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी बना।

वर्तमान शिक्षा और नैतिक जीवन पर प्रभाव - बुद्ध का दर्शन व्यक्ति के नैतिक विकास पर बल देता है। सम्यक वाणी, सम्यक कर्म और सम्यक आजीविका जैसे सिद्धांत व्यक्ति को जिम्मेदार और नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। आधुनिक शिक्षा में केवल ज्ञान और कौशल ही पर्याप्त नहीं हैं; विद्यार्थियों में नैतिकता, सहिष्णुता, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास भी आवश्यक है। बुद्ध का शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण अनुभव और आत्मचिंतन को महत्व देता है। आधुनिक शिक्षण व्यवस्था में आलोचनात्मक चिंतन, आत्म-अनुशासन और सामाजिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने के लिए बुद्ध के विचार उपयोगी हो सकते हैं।

मानसिक शांति और ध्यान - वर्तमान समय में तेज जीवनशैली, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक दबाव के कारण मानसिक तनाव बढ़ रहा है। बुद्ध ने मन की प्रकृति को समझने और उसे नियंत्रित करने पर विशेष बल दिया। ध्यान, स्मृति और आत्मनिरीक्षण उनके शिक्षण का महत्वपूर्ण हिस्सा थे। आधुनिक समय में पूर्ण जागरूकता और ध्यान की अवधारणाओं को शिक्षा, कार्यस्थल तथा व्यक्तिगत जीवन में अपनाया जा रहा है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को वर्तमान क्षण के प्रति सजग बनाना, मानसिक एकाग्रता बढ़ाना और तनाव को कम करना है। हालांकि आधुनिक समय में पूर्ण जागरूकता की की सभी धाराएँ सीधे बौद्ध धर्म के समान नहीं हैं, फिर भी उनका ऐतिहासिक संबंध बौद्ध ध्यान परंपराओं से स्पष्ट दीखता है।

लोकतांत्रिक एवं मानवीय मूल्यों पर प्रभाव - बुद्ध का संदेश व्यक्ति की गरिमा, नैतिक स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व को महत्व देता है। उन्होंने व्यक्ति को स्वयं विचार करने तथा अपने आचरण के परिणामों को समझने की प्रेरणा दी। यही कारण है कि आधुनिक विद्वान बुद्ध के दर्शन में स्वतंत्र चिंतन और नैतिक जिम्मेदारी के तत्वों को महत्वपूर्ण मानते हैं। लोकतांत्रिक समाज में समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सहिष्णुता जैसे मूल्यों की आवश्यकता होती है। बुद्ध का मैत्री और करुणा आधारित चिंतन इन मूल्यों के विकास में वैचारिक आधार प्रदान कर सकता है।

पर्यावरणीय चेतना के संदर्भ में बुद्ध - बौद्ध दर्शन में सभी जीवों के प्रति करुणा और अहिंसा की भावना महत्वपूर्ण है। मनुष्य को प्रकृति से पूर्णतः अलग और उसका स्वामी मानने के बजाय जीवन की परस्पर संबद्धता को समझना बौद्ध चिंतन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

आज जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जैव विविधता के संकट और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन जैसी समस्याएँ सामने हैं। उपभोग को नियंत्रित करने, इच्छाओं पर संयम रखने और सभी जीवों के प्रति करुणा विकसित करने का बुद्ध का संदेश पर्यावरणीय नैतिकता के संदर्भ में उपयोगी माना जा सकता है।

वैश्विक शांति में बुद्ध का संदेश - आज विश्व के अनेक देशों में युद्ध, संघर्ष और राजनीतिक तनाव मौजूद हैं। ऐसी परिस्थितियों में बुद्ध का अहिंसा और करुणा का दर्शन वैश्विक शांति के लिए महत्वपूर्ण नैतिक आधार प्रस्तुत करता है। बुद्ध ने हिंसा के स्थान पर संवाद, मैत्री और आत्मसंयम को महत्व दिया। संयुक्त राष्ट्र तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के शांति और सह-अस्तित्व संबंधी विमर्श में भी अहिंसा, सहिष्णुता और करुणा जैसे मूल्य महत्वपूर्ण हैं। बुद्ध का संदेश इस वैश्विक नैतिकता के निर्माण में योगदान कर सकता है।

आधुनिक भारतीय समाज में बुद्ध की प्रासंगिकता - भारत में बौद्ध धर्म का ऐतिहासिक प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा है। बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर और वैशाली जैसे स्थल आज भी बौद्ध विरासत और पर्यटन के प्रमुख केंद्र हैं। इन स्थलों का धार्मिक महत्व होने के साथ-साथ ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व भी है। आधुनिक भारत में बुद्ध की विरासत संग्रहालयों, स्मारकों, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से संरक्षित की जा रही है। इससे नई पीढ़ी को भारतीय इतिहास और बौद्ध दर्शन से परिचित होने का अवसर मिलता है।

वैश्विक स्तर पर प्रभाव - बुद्ध का संदेश भारत की सीमाओं से बहुत आगे फैल चुका है। श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड, चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत और अन्य देशों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं पर बौद्ध धर्म का

महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। विभिन्न देशों में बौद्ध दर्शन ने स्थानीय संस्कृतियों के साथ समन्वय स्थापित करते हुए अलग-अलग रूप ग्रहण किए। आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में बौद्ध ध्यान, दर्शन और नैतिकता का अध्ययन पश्चिमी देशों में भी बढ़ा है। विश्वविद्यालयों में बौद्ध अध्ययन, तुलनात्मक धर्म, दर्शन और ध्यान पर शोध किए जा रहे हैं। इससे बुद्ध के विचारों को एक वैश्विक बौद्धिक परंपरा के रूप में समझने का अवसर मिला है।

उपभोक्तावाद और बुद्ध का मध्यम मार्ग - आधुनिक समाज में उपभोक्तावाद ने जीवन की आवश्यकताओं और इच्छाओं के बीच अंतर को कम कर दिया है। अत्यधिक उपभोग, प्रतिस्पर्धा और भौतिक सफलता की निरंतर इच्छा व्यक्ति में तनाव और असंतोष पैदा कर सकती है। बुद्ध का मध्यम मार्ग अत्यधिक भोग और अत्यधिक तपस्या दोनों से बचने की प्रेरणा देता है। आधुनिक संदर्भ में इसे संतुलित जीवन, सीमित उपभोग, आत्मसंयम और मानसिक संतुलन के विचार से जोड़ा जा सकता है।

ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से मूल्यांकन - बुद्ध के संदेश के प्रभाव को समझने के लिए ऐतिहासिक निरंतरता और परिवर्तन दोनों को देखना आवश्यक है। बुद्ध के मूल उपदेशों से लेकर अशोक के धम्म, एशिया में बौद्ध धर्म के प्रसार, आधुनिक बौद्ध पुनर्जागरण तक एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया दिखाई देती है। आधुनिक समाज में बुद्ध के विचारों की व्याख्या कई नए संदर्भों में की जा रही है, इसलिए यह आवश्यक है कि आधुनिक व्याख्याओं और ऐतिहासिक बौद्ध शिक्षाओं के बीच अंतर को समझा जाए। बुद्ध के मूल संदेश को समकालीन आवश्यकताओं के साथ जोड़ते समय उसके ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखना चाहिए।

निष्कर्ष - वर्तमान समय में बुद्ध के संदेश का प्रभाव व्यापक और बहुआयामी है। लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व दिया गया उनका संदेश आज भी मानव जीवन की अनेक समस्याओं से संवाद करता है। अहिंसा, करुणा, मैत्री, नैतिक आचरण, आत्मसंयम और मध्यम मार्ग जैसे सिद्धांत आधुनिक समाज के लिए महत्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से बुद्ध का प्रभाव केवल बौद्ध धर्म के विकास तक सीमित नहीं रहा। उन्होंने भारतीय सामाजिक एवं बौद्धिक परंपरा को प्रभावित किया तथा अशोक के माध्यम से उनके विचारों को व्यापक राजनीतिक और नैतिक आयाम मिला। बाद में एशिया के अनेक देशों में बौद्ध दर्शन ने स्थानीय संस्कृतियों और सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित किया। आधुनिक भारत में बुद्ध का संदेश सामाजिक समानता और न्याय के विमर्श से भी जुड़ा है। डॉ. आंबेडकर की बौद्ध व्याख्या ने इसे आधुनिक सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि प्रदान की। वर्तमान वैश्विक समाज में हिंसा, असहिष्णुता, तनाव, उपभोक्तावाद और पर्यावरणीय संकट जैसी चुनौतियों के बीच बुद्ध का करुणा, अहिंसा और संतुलन आधारित दर्शन विशेष रूप से प्रासंगिक दिखाई देता है।

अंततः कहा जा सकता है कि बुद्ध का संदेश केवल अतीत की ऐतिहासिक विरासत नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक महत्वपूर्ण नैतिक एवं मानवीय दृष्टिकोण है। बुद्ध के विचार नैतिकता, शिक्षा, सामाजिक न्याय, शांति को अपनाकर समाज को अधिक शांतिपूर्ण, समानतापूर्ण और मानवीय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. अम्वेद्कर, बी. आर. (2011). बुद्ध और उनका धम्म. सम्यक प्रकाशन।
2. अम्बेडकर, बी. आर. (2017). भगवान बुद्ध और उनका धम्म. सिद्धार्थ प्रकाशन।
3. उपाध्याय, भरत सिंह. (2005). बुद्ध चरित. चौखम्बा विद्याभवन।
4. राहुल सांकृत्यायन. (2008). बौद्ध दर्शन. किताब महल।
5. श्यामाचरण दुबे. (2004). भारतीय समाज. नेशनल बुक ट्रस्ट।
6. Ambedkar, B. R. (1957). The Buddha and His Dhamma. Siddharth College Publications.

7. Gombrich, R. (2006). Theravāda Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo. Routledge.
8. Harvey, P. (2013). An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices (2nd ed.). Cambridge University Press.
9. Keown, D. (2013). *Buddhism:* A Very Short Introduction. Oxford University Press.
10. Rahula, W. (1974). What the Buddha Taught. Grove Press.
11. Strong, J. S. (2001). The Buddha: A Short Biography. Oneworld Publications

लैंगिक भेदभाव से समाज में मौजूद अराजकता : एक अध्ययन

डॉ. रघुवंश कुमार सिन्हा*

शोध-सार -

लैंगिक भेदभाव भारतीय समाज की उन प्रमुख सामाजिक समस्याओं में से एक है, जिसने सामाजिक समानता, न्याय, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा के मूल्यों को लंबे समय से प्रभावित किया है। स्त्री और पुरुष के बीच जैविक अंतर को आधार बनाकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक अवसरों में असमानता उत्पन्न करना लैंगिक भेदभाव का प्रमुख स्वरूप है। यद्यपि आधुनिक भारतीय समाज में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, राजनीति और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी निरंतर बढ़ी है, फिर भी परिवार और समाज के अनेक स्तरों पर लैंगिक असमानता आज भी दिखाई देती है। यह असमानता केवल महिलाओं के विकास को बाधित नहीं करती, बल्कि सामाजिक तनाव, असंतोष, संघर्ष, हिंसा और अराजकता को भी बढ़ावा देती है।

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य लैंगिक भेदभाव और सामाजिक अराजकता के बीच संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह समझने का प्रयास किया गया है कि परिवार, शिक्षा, कार्यस्थल, राजनीति, धर्म, मीडिया और सामाजिक परंपराओं में मौजूद लैंगिक असमानता किस प्रकार सामाजिक संबंधों को प्रभावित करती है। जब किसी व्यक्ति या समूह को केवल उसके लिंग के आधार पर अवसरों, अधिकारों और संसाधनों से वंचित किया जाता है, तो उसके भीतर असंतोष, हीनता, निराशा और सामाजिक अलगाव की भावना उत्पन्न हो सकती है। लंबे समय तक बनी रहने वाली ऐसी स्थितियाँ परिवार और समुदाय में तनाव को बढ़ाती हैं तथा व्यापक स्तर पर सामाजिक अव्यवस्था को जन्म दे सकती हैं।

भारतीय समाज में पुत्र-प्राथमिकता, बालिका शिक्षा की उपेक्षा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा, महिलाओं के प्रति यौन हिंसा, संपत्ति में असमान अधिकार, रोजगार में भेदभाव और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में महिलाओं की सीमित भागीदारी लैंगिक भेदभाव के प्रमुख उदाहरण हैं। दूसरी ओर, पुरुषों से जुड़ी कठोर सामाजिक अपेक्षाएँ भी सामाजिक तनाव को बढ़ा सकती हैं। पुरुषों को आक्रामक, आर्थिक रूप से सक्षम और भावनात्मक रूप से कठोर होने की अपेक्षा सामाजिक दबावों को जन्म देती है।

अध्ययन का मूल यह है कि लैंगिक समानता केवल महिलाओं के अधिकारों का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक न्याय का प्रश्न है। समान अवसर, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक सहभागिता, कानूनी संरक्षण तथा लैंगिक संवेदनशील सामाजिककरण के माध्यम से भेदभाव को कम किया जा सकता है। परिवार और विद्यालय को समानता की भावना विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। साथ ही, कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन और सामाजिक जागरूकता के माध्यम से ऐसी सामाजिक संरचना का निर्माण आवश्यक है, जिसमें किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसके लिंग के आधार पर निर्धारित न हो। लैंगिक भेदभाव को समाप्त करना सामाजिक शांति, लोकतांत्रिक मूल्यों और समतामूलक समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है।

मुख्य शब्द - लैंगिक भेदभाव, लैंगिक असमानता, सामाजिक अराजकता, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तीकरण, पितृसत्ता, सामाजिक परिवर्तन, हिंसा, सामाजिक तनाव।

* सहायक (अतिथि) प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, एस.बी.ए.एन.कॉलेज दरहेटा,लारी मगध विश्वविद्यालय बोधगया की अंगीभूत इकाई Email Id – raghu.saifgunj@gmail.com, LMI-4589

शोध-सारांश - मानव समाज की संरचना विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, संबंधों, मूल्यों और मानदंडों पर आधारित होती है। परिवार, शिक्षा, धर्म, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा संस्कृति व्यक्ति के व्यवहार और सामाजिक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं। किसी भी समाज की स्थिरता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके सदस्यों को अधिकार, अवसर और संसाधन किस सीमा तक समान रूप से उपलब्ध हैं। जब समाज में किसी व्यक्ति या समूह के साथ उसके लिंग के आधार पर असमान व्यवहार किया जाता है, तो यह स्थिति लैंगिक भेदभाव का रूप धारण कर लेती है। लैंगिक भेदभाव केवल महिलाओं और पुरुषों के बीच अंतर करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक अवसरों, अधिकारों, निर्णय लेने की क्षमता, शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और सम्मान के वितरण को भी प्रभावित करता है।[1]

भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव का इतिहास सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं से जुड़ा हुआ है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने लंबे समय तक परिवार और समाज में पुरुषों को निर्णय लेने की प्रमुख भूमिका प्रदान की, जबकि महिलाओं को घरेलू भूमिकाओं तक सीमित रखने की प्रवृत्ति विकसित हुई। हालांकि आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीकरण, लोकतंत्र, संवैधानिक अधिकार और महिला आंदोलनों ने महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन किया है, फिर भी पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएँ अनेक क्षेत्रों में कायम हैं।[2]

लैंगिक भेदभाव का सबसे पहला अनुभव व्यक्ति को परिवार में प्राप्त होता है। अनेक परिवारों में पुत्र और पुत्री के पालन-पोषण, शिक्षा, भोजन, स्वास्थ्य तथा स्वतंत्रता के स्तर में अंतर देखने को मिलता है। पुत्र को परिवार का उत्तराधिकारी और वृद्धावस्था का सहारा मानना तथा पुत्री को आर्थिक बोझ समझना लैंगिक असमानता को मजबूत करता है। परिणामस्वरूप बालिकाओं को उच्च शिक्षा और रोजगार के समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाते। इस प्रकार परिवार सामाजिककरण की प्रक्रिया के माध्यम से लैंगिक असमानता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित कर सकता है।[3]

शिक्षा लैंगिक समानता स्थापित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। शिक्षा व्यक्ति में अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता पैदा करती है तथा रूढ़िवादी विचारों को चुनौती देने की क्षमता विकसित करती है। इसके बावजूद अनेक सामाजिक समूहों में बालिकाओं की शिक्षा को अभी भी प्राथमिकता नहीं दी जाती। गरीबी, घरेलू कार्यों का बोझ, बाल विवाह, सुरक्षा संबंधी चिंताएँ और सामाजिक रूढ़ियाँ लड़कियों की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती हैं। जब समाज का एक बड़ा वर्ग शिक्षा और ज्ञान के समान अवसरों से वंचित होता है, तो सामाजिक विकास की गति भी प्रभावित होती है।[4]

लैंगिक भेदभाव का आर्थिक क्षेत्र पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है। महिलाओं की श्रम शक्ति में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, रोजगार की सुरक्षा और पदोन्नति के अवसरों में असमानता अनेक समाजों में दिखाई देती है। महिलाओं के घरेलू श्रम को प्रायः आर्थिक मूल्य नहीं दिया जाता, जबकि परिवार की आर्थिक व्यवस्था में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। आर्थिक निर्भरता महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता को सीमित कर सकती है और उन्हें शोषण तथा हिंसा के प्रति अधिक असुरक्षित बना सकती है।[5]

लैंगिक भेदभाव और सामाजिक अराजकता के बीच संबंध को समझने के लिए सामाजिक तनाव को समझना महत्वपूर्ण है। जब व्यक्ति लगातार भेदभाव, अपमान या अवसरों की कमी का सामना करता है, तो उसके भीतर असंतोष उत्पन्न हो सकता है। यदि सामाजिक संस्थाएँ उस असंतोष के समाधान के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं करातीं, तो यह असंतोष संघर्ष का रूप ले सकता है। लैंगिक भेदभाव के कारण उत्पन्न तनाव परिवार में विवाद, घरेलू हिंसा, वैवाहिक संघर्ष, सामाजिक अलगाव और मानसिक दबाव को बढ़ा सकता है। व्यापक स्तर पर यह सामाजिक विश्वास और सामाजिक एकता को कमजोर करता है।[6]

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा लैंगिक भेदभाव का सबसे गंभीर परिणाम है। घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, बाल विवाह, मानव तस्करी और अन्य प्रकार की हिंसा महिलाओं की स्वतंत्रता तथा गरिमा को

प्रभावित करती है। हिंसा का वातावरण केवल पीड़ित व्यक्ति को प्रभावित नहीं करता, बल्कि बच्चों, परिवार और समुदाय के सामाजिक संबंधों पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। ऐसी परिस्थितियों में भय, असुरक्षा और अविश्वास का वातावरण उत्पन्न होता है, जो सामाजिक व्यवस्था के लिए चुनौती बन सकता है।(7)

दहेज प्रथा लैंगिक भेदभाव का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। विवाह को आर्थिक लेन-देन से जोड़ने के कारण कन्या को आर्थिक बोझ समझने की मानसिकता को बढ़ावा मिलता है। इसके परिणामस्वरूप कन्या भ्रूण हत्या, बालिकाओं की उपेक्षा, विवाह में आर्थिक दबाव तथा विवाह के बाद उत्पीड़न जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। दहेज संबंधी विवाद परिवारों के बीच तनाव तथा हिंसा का कारण बनते हैं। इस प्रकार एक सामाजिक परंपरा व्यापक सामाजिक अव्यवस्था का आधार बन सकती है।(8)

राजनीतिक क्षेत्र में भी लैंगिक असमानता सामाजिक शक्ति के असमान वितरण को दर्शाती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता बढ़ी है, फिर भी निर्णय लेने वाली संस्थाओं में उनकी भागीदारी कई स्तरों पर सीमित रही है। स्थानीय स्वशासन में महिलाओं की भागीदारी ने राजनीतिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया है, लेकिन वास्तविक निर्णय लेने की स्वतंत्रता, सामाजिक दबाव और पारंपरिक सत्ता संरचनाएँ कई बार उनकी भूमिका को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक निर्णयों में महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी सामाजिक नीतियों को अधिक समावेशी बनाने में सहायक हो सकती है।(9)

मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति भी लैंगिक भूमिकाओं को प्रभावित करते हैं। विज्ञापन, चलचित्र, धारावाहिक और सोशल मीडिया में महिलाओं तथा पुरुषों की रूढ़िबद्ध छवियाँ सामाजिक सोच को प्रभावित कर सकती हैं। यदि महिलाओं को केवल सौंदर्य, घरेलू भूमिका या निर्भरता के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है, तो इससे पारंपरिक लैंगिक धारणाएँ मजबूत हो सकती हैं। इसके विपरीत, मीडिया में महिलाओं की विविध और स्वतंत्र भूमिकाओं का सकारात्मक चित्रण सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन ला सकता है। लैंगिक भेदभाव पुरुषों को भी प्रभावित करता है। समाज में पुरुषों से आर्थिक रूप से सफल, शक्तिशाली और भावनात्मक रूप से कठोर होने की अपेक्षा की जाती है। ऐसी सामाजिक अपेक्षाएँ पुरुषों पर दबाव उत्पन्न कर सकती हैं। इसलिए लैंगिक समानता का उद्देश्य केवल महिलाओं को अवसर प्रदान करना नहीं, बल्कि पुरुषों और महिलाओं दोनों को कठोर सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त करना होना चाहिए।(10)

लैंगिक समानता स्थापित करने के लिए सबसे पहले परिवार में समान सामाजिककरण आवश्यक है। पुत्र और पुत्री को समान शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, स्वतंत्रता और निर्णय लेने के अवसर मिलने चाहिए। विद्यालयों में लैंगिक संवेदनशील पाठ्यक्रम और गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। बच्चों को प्रारंभिक अवस्था से यह समझाना आवश्यक है कि घरेलू कार्य केवल महिलाओं का दायित्व नहीं है और आर्थिक जिम्मेदारी केवल पुरुषों की भूमिका नहीं है।

आर्थिक सशक्तीकरण भी लैंगिक भेदभाव को कम करने का प्रभावी साधन है। महिलाओं को कौशल विकास, रोजगार, उद्यमिता, वित्तीय सेवाओं और संपत्ति के अधिकारों तक समान पहुँच प्रदान की जानी चाहिए। आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं की निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत करती है तथा उन्हें शोषणकारी परिस्थितियों से बाहर निकलने में सहायता करती है।(11)

कानूनी व्यवस्था की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय संविधान समानता और भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। महिलाओं की सुरक्षा तथा समान अधिकारों के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं। लेकिन केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है। कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन, पीड़ितों को न्याय तक आसान पहुँच, पुलिस एवं न्यायिक संस्थाओं की संवेदनशीलता और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है।

लैंगिक भेदभाव को समाप्त करना सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। इसके लिए परिवार, विद्यालय, सरकार, नागरिक समाज, मीडिया और समुदाय को सामूहिक रूप से प्रयास करना होगा। सामाजिक

अराजकता को केवल कानून और दंड के माध्यम से नियंत्रित नहीं किया जा सकता; उसके सामाजिक कारणों को समझना भी आवश्यक है। लैंगिक असमानता उन्हीं कारणों में से एक है जो सामाजिक तनाव और संघर्ष को बढ़ा सकती है। लैंगिक समानता को सामाजिक विकास का आधार माना जाना चाहिए। जिस समाज में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार, सम्मान और अवसर प्राप्त होते हैं, वहाँ सामाजिक सहयोग, विश्वास और सहभागिता की संभावनाएँ अधिक होती हैं। लैंगिक भेदभाव को समाप्त करके ही न्यायपूर्ण, शांतिपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना की जा सकती है।[12]

निष्कर्ष - आज भी लैंगिक भेदभाव समाज की संरचना में मौजूद एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जिसका प्रभाव व्यक्ति से लेकर परिवार, समुदाय और व्यापक सामाजिक व्यवस्था तक दिखाई देता है। स्त्री और पुरुष के बीच जैविक अंतर को सामाजिक असमानता का आधार बनाना सामाजिक न्याय और समानता के मूल्यों के विरुद्ध है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लैंगिक भेदभाव केवल महिलाओं के विकास में बाधा उत्पन्न नहीं करता, बल्कि सामाजिक संबंधों में तनाव, असंतोष, संघर्ष और असुरक्षा को भी बढ़ावा देता है। परिवार लैंगिक भूमिकाओं के निर्माण और सामाजिककरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि परिवार में पुत्र और पुत्री के बीच भेदभाव किया जाता है, तो बच्चों के मन में असमानता की धारणा प्रारंभिक अवस्था से विकसित हो सकती है। यही धारणा आगे चलकर शिक्षा, रोजगार, विवाह, संपत्ति और राजनीतिक सहभागिता जैसे क्षेत्रों में दिखाई देती है। इसलिए लैंगिक समानता की शुरुआत परिवार से ही होनी चाहिए। शिक्षा लैंगिक भेदभाव समाप्त करने का सबसे प्रभावी माध्यम है। समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास, जागरूकता तथा आर्थिक स्वतंत्रता विकसित करती है। शिक्षित महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक होती हैं और परिवार तथा समाज के निर्णयों में प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। इसलिए बालिकाओं की शिक्षा को सामाजिक विकास की प्राथमिकता बनाया जाना आवश्यक है।

आर्थिक असमानता भी लैंगिक भेदभाव को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक रूप से निर्भर व्यक्ति शोषणकारी परिस्थितियों का विरोध करने में कठिनाई अनुभव कर सकता है। इसलिए महिलाओं के लिए रोजगार, कौशल विकास, उद्यमिता, समान वेतन और संपत्ति के अधिकारों को सुनिश्चित करना आवश्यक है। आर्थिक सशक्तीकरण सामाजिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

लैंगिक भेदभाव से उत्पन्न हिंसा सामाजिक अराजकता का गंभीर रूप है। घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, यौन हिंसा और अन्य प्रकार के शोषण से परिवार तथा समुदाय में भय और असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न होता है। ऐसे वातावरण में सामाजिक विश्वास कमजोर होता है। इसलिए कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन के साथ-साथ सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक है। राजनीतिक और सामाजिक निर्णयों में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी भी आवश्यक है। महिलाओं को केवल प्रतिनिधित्व प्रदान करना पर्याप्त नहीं है; उन्हें वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति और स्वतंत्रता भी मिलनी चाहिए। स्थानीय शासन और अन्य लोकतांत्रिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी सामाजिक नीतियों को अधिक समावेशी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

लैंगिक समानता केवल महिलाओं का मुद्दा नहीं है बल्कि पुरुषों पर भी पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं का दबाव रहता है। इसलिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें पुरुषों और महिलाओं दोनों को अपनी क्षमताओं के अनुसार जीवन चुनने की स्वतंत्रता मिले। लैंगिक भेदभाव को कम करने के लिए सम्मिलित प्रयास आवश्यक हैं। परिवार में समान व्यवहार, विद्यालय में लैंगिक संवेदनशील शिक्षा, महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण, राजनीतिक सहभागिता, कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन, मीडिया की सकारात्मक भूमिका और व्यापक सामाजिक जागरूकता इसके प्रमुख आधार हैं। कहा जा सकता है कि लैंगिक समानता सामाजिक शांति और सामाजिक व्यवस्था के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। जब समाज में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार, सम्मान और अवसर प्राप्त होंगे, तब सामाजिक तनाव और संघर्ष को कम किया जा सकेगा। इसलिए लैंगिक

भेदभाव का की समाप्त होना केवल महिला सशक्तीकरण का लक्ष्य नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक, शांतिपूर्ण और समतामूलक समाज के निर्माण के लिए भी अनिवार्य है।

संदर्भ सूची

1. आहूजा, राम. (2014). भारतीय सामाजिक व्यवस्था. रावत पब्लिकेशन्स।
2. आहूजा, राम. (2015). सामाजिक समस्याएँ. रावत पब्लिकेशन्स।
3. दुबे, लीला. (2001). Women and kinship: Comparative perspectives on gender in South and South-East Asia. रावत पब्लिकेशन्स।
4. घुर्ये, जी. एस. (2016). भारतीय साधु-संन्यासी. पॉपुलर प्रकाशन।
5. श्रीवास्तव, ए. के. (2018). भारतीय समाज एवं सामाजिक परिवर्तन. ज्ञानदा प्रकाशन।
6. सिंह, योगेंद्र. (2015). भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण. रावत पब्लिकेशन्स।
7. बोर्द्यू, पी. (2001). पुरुष प्रभुत्व. स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. बटलर, जे. (2006). जेंडर ट्रबल: नारीवाद और पहचान का विध्वंस. रूटलेज।
9. कास्टेल्स, एम. (2010). द पावर ऑफ आइडेंटिटी. विले-ब्लैकवेल।
10. गोइट्ज़, ए. एम. (2008). लिंग और विकास. रूटलेज।
11. सेन, ए. (1999). डेवलपमेंट ऐज़ फ्रीडम. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. यूनाइटेड नेशंस डेवलपमेंट प्रोग्राम. (2020). मानव विकास रिपोर्ट *2020*. यूएनडीपी।

◂◂ ▸▸

महिला विकास के सामाजिक आयामः संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ

डॉ. मनीषा कुमारी*
सुधीर कुमार**

अमूर्त

भारत में महिलाओं की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रही हैं और सफल भी हो रही हैं। बात चाहे हम राजनीति की करें या व्यवसाय की, बात मीडिया की हो या भारी उद्योग, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, अंतरिक्ष और वैज्ञानिक शोध की, हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी योग्यता और दक्षता साबित की है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां महिलाओं की प्रभावी उपस्थिति न हो।वर्तमान संदर्भ में विश्व के प्रत्येक देश में महिलाओं के समुचित विकास एवं सशक्तिकरण के लिए अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है। परिणामतः 21वीं सदी को महिलाओं की सदी कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा। महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर अपनी अन्तर्निहित क्षमता के बल पर आत्मविश्वास और साहस के साथ इस पुरुष प्रधान समाज में अपना अस्तित्व बनाने का प्रयास करती रही है। विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों ने महिलाओं को कुछ विशेष अधिकार दिये हैं। सामाजिक संगठन में पुरूषों के बराबर संख्या होते हुए भी महिलाएं उस स्तर तक प्रगति नहीं कर सकी हैं, जहां तक पुरुष वर्ग की भागीदारी रही है। वर्तमान सामाजिक स्वरूप में महिलाओं पर अधिक भार है। वे परिवार का पालन करती है और नई पीढ़ी तैयार करना उनका प्रमुख दायित्व है। शिक्षा उनके स्वाभिमान को जागृत कर कार्यक्षेत्र की परिधि को विस्तार देती है। व्यवसायिक कुशलता से प्रतिभा और ख्याति प्राप्त करती हैं तथा बच्चों का प्रभावशाली ढंग से पथ प्रदर्शन कर सकती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत में महिला विकास के सामाजिक आयामों का विश्लेषण करना है। इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों के आधार पर भारत में महिला विकास के वर्तमान सामाजिक चुनौतियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द: महिला विकास, व्यावसायिक कुशलता, सामाजिक संगठन, महिला शिक्षा, महिला स्वास्थ्य।

भूमिकाः

वैदिक ऋषियों और चिंतकों से लेकर आधुनिक समाज दृष्टाओं और मनीषियों ने स्त्री के अंदर छुपी शक्ति को पहचाना और स्वीकार किया गया है। **महात्मा गांधी** ने तो यहाँ तक कहा कि *"अगर घर के किसी कोने में गड़ा खजाना अचानक मिल जाए तो कितनी खुशी होगी। महिला शक्ति सुप्त पड़ी है। अगर एशिया की महिलाएं जाग जाएं तो वे इसी प्रकार विश्व को चकाचौंध कर देंगी। जहां शक्ति है वहां क्षमता भी है। क्षमता योग्यता को विकसित कर सकती है। इसके लिए उचित अवसर की उपलब्धता और समाज के सहयोग की आवश्यकता है।"*

पारिवारिक मांगलिक और धार्मिक कार्यों में महिलाओं की सहभागिता को जब हमारे प्राचीन मनीषियों ने अनिवार्य कर दिया था तो आज सामाजिक कार्यों और सत्ता में उनकी सहभागिता अनिवार्य क्यों न हो? वैदिक कार्य में वह स्वतंत्रता का उपभोग करती थी। और वह शिक्षा प्राप्त करने की भी अधिकारिणी थी। यही कारण है कि उस काल की स्त्रियां ऋषियों मुनियों की पदवी तक पा गई थी, जैसे शचि, इन्द्राणी, अदिति, अपाला उर्वशी, सावित्री, सूर्या, गार्गा, मैत्रेयी आदि। लेकिन मध्यकाल आते आते उनकी स्थिति दयनीय हो गई। अशिक्षा अज्ञानता और रूढ़िवादिता ने उस काल में स्त्रियों को उबरने नहीं दिया। **डा0 शारदा गोस्वामीः 1972**

ब्रिटिश शासन काल में सम्पूर्ण भारतवासी दासता की बेड़ियों से जकड़े हुए थे, फिर स्त्रियों की स्वतंत्रता का तो प्रश्न ही कहा उठ खड़ा हो सकता था? लेकिन स्वतंत्रता संग्राम में पुरुषों के साथ–साथ देश

* असिस्टेंट प्रोफेसर (शोध–निर्देशिका), समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
** पी–एच0डी0 शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

की नारियों ने भी बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। जब भारत 1950 में गणतंत्र बना और इसे लिखित संविधान मिला तो प्रत्येक भारतवासी का, जिसमें निःसंदेश स्त्री भी शामिल है, राजनीति और निर्णय लेने की प्रक्रिया के हर स्तर पर भागीदारी के अधिकार को बिना किसी भेदभाव के मान्यता मिली। लेकिन इसके बावजूद सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी में कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई। *''सच्चाई यही है कि चाहे राष्ट्रीय हो या स्थानीय स्तर निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी नगण्य ही रही। अधिकार मिल जाने मात्र से उनके उपभोग की समझ और क्षमता व्यक्ति में उत्पन्न नहीं हो पाती।''* **पी0 आर0 शर्माः 1982।**

स्वामी विवेकानन्द ने कितना उचित कहा था कि ***"जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा, जब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। किसी भी पक्षी का एक पंख से उड़ना संभव नहीं है।"***[1]

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को 50% आरक्षण बिहार की राज्य सरकार ने एक नई सोच और एक नई दिशा प्रदान की है। राज्य सरकार द्वारा महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण की दृष्टि से शुरू की गई अनेक योजनाएँ पूरे देश के लिए मिसाल बनी है। महिलाओं को शिक्षित करने के साथ–साथ उन्हें अधिक रूप में आत्मनिर्भर एवं सशक्त बनाने के लिए नए बजट प्रावधानों से महिला विकास की दिशा में नए युग का सूत्रपात हुआ है।

महिला विकास के सामाजिक आयामः

''विकास एक सतत प्रक्रिया है जो समय के साथ चलती रहती है। विकास के दो पक्ष हैं–मानव (जनसंख्या) और संसाधन। यदि संसाधनों का उपयोग करके हम मानव जाति की आधारभूत जरूरतें पूरी कर सकें तो हम कह सकते हैं कि हम विकास कर रहे हैं। कोई भी समाज तभी विकसित कहला सकता है जब उसकी सभी जरूरतें पूरी हो जाती हों।''[2]

भोजन, आवास, स्वास्थ्य सुविधाएं किसी भी व्यक्ति की आधारभूत जरूरतें हैं लेकिन ये जरूरतें सिर्फ जीवन–निर्वाह की हैं। विकास की शर्तें कुछ अलग हैं। शिक्षा, लिंगानुपात, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएं और काम करने की आजादी आदि को 'संयुक्त राष्ट्र संघ' विकास का पैमाना मानता है। वैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, 'मानव विकास सूचकांक' (HDI) निर्धारित करने के लिए प्रतिव्यक्ति आय, जीवन स्तर और पर्यावरणीय दशाओं का भी प्रयोग करता है।

देशभर में लिंगानुपात बेहद कम है। विश्व के अधिकतर विकसित देशों में लिंगानुपात लगभग बराबर है तो कहीं–कहीं तो यह पुरुषों के मुकाबले अधिक भी है। वास्तव में लिंगानुपात सीधे–सीधे समाज में महिलाओं की स्थिति का प्रतीक है। कम लिंगानुपात यानि कम विकसित राष्ट्र।

''हमारे यहां लिंगानुपात उन राज्यों में न्यूनतम है जो आर्थिक दृष्टि से भारत के विकसित राज्यों में गिने जाते हैं। हरियाणा और पंजाब जैसे अतिविकसित राज्यों में न्यूनतम लिंगानुपात बताता है कि भारत में यह सिर्फ आर्थिक समस्या ही नहीं है अपितु इसके पीछे कई सामाजिक व सांस्कृतिक कारण भी हैं।''[3] जो समाज अपनी बेटियों को पैदा ही नहीं होने देता उसे किस मुंह से हम विकसित कह सकते हैं?

डॉ. अमर्त्य सेन के शोध–पत्र *''एक्सपेंशन ऑफ एंटाइटिलमेंट्स एण्ड कैपेबिलिटिज''* में अमर्त्य सेन ने कहा था कि *''यदि अधिकारों का विस्तार कर दिया जाए तो विकास अपने आप हो जाएगा। विकास के लिए अधिकार जरूरी हैं। भारतीय महिलाओं को भी आज अधिकार दिए जाने की जरूरत है। जब इन्हें वाजिब राजनैतिक तामाजिक अधिकार मिल जाएंगे तो वे स्वतः ही विकास के रास्ते पर चल पड़ेंगी। 'आधी दुनिया' को विकास से महरूम रख कर 'विकास' का सपना देखना महज एक बेवकूफी ही है।''*[4]

महिला और स्वास्थ्यः

भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा महिलाएं और बच्चे हैं। इनके विकास के बिना देश की प्रगति बेमानी है। इन्हें साथ लेकर ही विकास की राह पर आगे बढ़ा जा सकता है। मगर समाज में लड़कियों की उपेक्षा उनके जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है। स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा सबमें वे लड़कों से पीछे हैं। शिक्षा के अभाव में कम उम्र में मां बनने और बार–बार गर्भधारण का उनकी सेहत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बाल मृत्यु दर में भी लड़को के मुकाबले लड़कियों की स्थिति दयनीय है। ''वर्ष 2011 में पांच साल से कम उम्र के प्रति 1000 बच्चों में लड़कों की मृत्यु दर 51 और लड़कियों की 59 थी।''[5] इससे पता चलता है कि लड़कियों के जन्म के अधिकार को सुनिश्चित कर भी दिया जाए तो देखभाल और परिवरिश में उनकी उपेक्षा जारी रहती हैं। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान के तहत सरकार पक्षपाती लिंग चयन को रोकने के साथ ही लड़कियों की शिक्षा, पोषण और सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहती है।

''देश के ज्यादातर हिस्सों में लड़कियों को बोझ समझा जाता है। गरीबी की दलदल में जी रहा जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आर्थिक रूप से इतना सक्षम नहीं है कि सभी बच्चों की शिक्षा का बोझ उठा सके। ऐसे में बेटी को नजरंदाज कर दिया जाता है।''[6] राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग के मुताबिक ''देश में छह से 14 साल तक की ज्यादातर लड़कियों को रोजाना औसतन आठ घंटे अपने घर के छोटे बच्चों को संभालने में लगाने पड़ते हैं। इसी तरह छह से 10 साल तक की 25 प्रतिशत लड़कियां स्कूल छोड़ देने के लिए मजबूर हैं। दस से 13 साल तक की स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों का प्रतिशत 50 से भी ज्यादा है।''[7]

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ओ' अभियान के तहत महिलाओं को गर्भावस्था के पहले तीन महीनों में नजदीकी अस्पताल या स्वास्थ्य केन्द्र में पंजीकरण कराने के लिए प्रेरित किया जाएगा। अस्पताल या स्वास्थ्य केन्द्र में डिलीवरी पर महिला को सरकार की ओर से एकमुश्त 3500 रूपये दिए जाएंगे। पंचायतों में गुड्डा–गुड्डी बोर्ड लगाए जाएगें जिन पर हर महीने जन्म लेने वाले लडकों और लड़कियों की संख्या दर्ज की जाएगी। इस अभियान के तहत बाल विवाह के खिलाफ कानून को सख्ती से लागू किया जाएगा। किसी गांव में बाल विवाह हाने पर पंचायत को जिम्मेदार माना जाएगा। जिन 100 जिलों में अभियान शुरू किया गया है उनके प्रतिनिधि सोसदों का एक फोरम बनाया जाएगा जो लिंगानुपात बढ़ाने के संबंध में प्रयासों का समन्वय करेगा।

योजना के तहत लड़कियों के लिए सुकन्या समृद्धि योजना लागू की जाएगी। इसमें 10 साल से कम उम्र की लड़कियों का बैंक खाता खोला जाएगा। इन खातों में बचत पर 9.1 प्रतिशत की सालाना दर से ब्याज दिया जाएगा और इनमें हर साल डेढ़ लाख रूपये तक की रकम जमा कराई जा सकेगी। खाता लड़की के 21 साल की उम्र हो जाने के बाद लड़की इससे 50 प्रतिशत रकम निकाल सकेगी।

"भारत में 15–18 साल की उम्र की 51.4 फीसदी महिलाएं खून की कमी से ग्रस्त हैं तथा इसी आयु वर्ग में 41 फीसदी पोषण के अभाव में कम वनज की समस्या से जुझ रहीं है। 20–22 आयु वर्ग में करीब 45. 6 फीसदी महिलाएं रक्त अल्पतता से ग्रस्त हैं तथा 30.6 फीसदी अंडरवेट हैं। इतना ही नहीं प्रजनन स्वास्थ्य में कमजोर होने की एक मुख्य वजह 50 फीसदी महिलाओं का विवाह 20 साल से कम उम्र में होना है।''[8]

सारणी: 1.1

महिलाओं में शिक्षा के स्तर के आधार पर प्रजनन दर (2020)[9]

शिक्षा का स्तर	कुल प्रजनन दर
निरक्षर	17.7
प्राथमिक से नीचे	13.3
प्राथमिक	11.4
मध्य विद्यालय	9.5
माध्यमिक	8.3
उच्च माध्यमिक	8.9
स्नातक एवं अधिक शिक्षित	7.8

स्रोत: *Man and Women in India,26th issue, National Statistics Office, Ministry of Statistics and programme Implimentation; Govt. of India and, Department of Justice, Ministry of Law and Justice, New Delhi.*

सारणी: 1.2

शिशु मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर एवं लड़कियों के विवाह की औसत आयु (2017–2020)[10]

वर्ष एवं मृत्यु दर	2017	2018	2019	2020
शिशु मृत्यु दर	33	32	30	28
बाल मृत्यु दर	37	36	35	32
विवाह की औसत आयु	22.1	22.3	22.1	22.7

स्रोत: *Man and Women in India,26th issue, National Statistics Office, Ministry of Statistics and programme Implimentation; Govt. of India and, Department of Justice, Ministry of Law and Justice, New Delhi.*

सारणीः 1.3

लिंग के अनुसार जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (1990–2036)[11]

वर्ष	पुरूष	महिला
1990-94	59.4	60.4
2001-05	63.1	65.6
2005-09	64.3	67.2
2010-14	66.4	69.6
2014-18	68.2	70.7
2015-19	68.4	71.1
2016-20	68.6	71.4
2021-25*	69.4	72.7
2026-30*	70.4	73.7
2031-36*	71.2	74.7

स्रोतः *Man and Women in India,26th issue, National Statistics Office, Ministry of Statistics and programme Implimentation; Govt. of India and, Department of Justice, Ministry of Law and Justice, New Delhi.*

शिक्षा एवं महिला विकासः

किसी भी राष्ट्र के विकास में उस क्षेत्र में निवास कर रहे मानव संसाधनों का योगदान बेहद महत्वपूर्ण होता है। *''मानव इतिहास भी इस बात का गवाह रहा है कि विश्व में विभिन्न युगों में निर्मित होने वाली गौरवाशाली विश्व सभ्यताओं के निर्माण तथा विकास का श्रेय मानव को ही जाता है। इस प्रकार जिस राष्ट्र का मानव संसाधन जितना अधिक शिक्षित तथा बुद्धिजीवी होगा वह राष्ट्र उतना ही अधिक प्रगतिशील तथा विकसित होगा।''*[12]

भारत के जनसंख्या परिदृश्य पर एक नजर डालें तो ज्ञात होता है कि भारत में वर्ष 2001 में औसत साक्षरता दर 65.38 प्रतिशत थी, जिसमें पुरूष साक्षरता दर 75.85 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत थी। इस साक्षरता दर से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में महिला साक्षरता में काफी पिछड़ापन है जिसमें काफी कुछ किए जाने की सख्त और त्वरित आवश्यकता है। महिला शिक्षा के बारे में सुप्रसिद्ध समाज सेविका **दुर्गाबाई देशमुख** का कहना था कि ***'एक लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है जबकि एक लड़की की शिक्षा पूरे परिवार की शिक्षा है।'*** इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में स्त्रियों की अशिक्षा ही शिक्षा के लोकव्यापीकरण में सबसे बड़ी बाधा है।

भारत में परंपरागत तथा रूढ़िवादी समाज में भी महिला साक्षरता को अनावश्यक समझा जाता रहा है, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान में भी महिला साक्षरता की स्थिति बेहद दयनीय बनी हुई है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज सुधारक **महात्मा ज्योतिबा फुले** की भी यह स्पष्ट राय थी कि *''कोई भी समाज तब तक सच्चे अर्थों में शिक्षित नहीं हो सकता जब तक उस समाज की महिलाएं शिक्षित नहीं हो जातीं। एक शिक्षित महिला परिवार में जो सुसंस्कार डाल सकती है वो कार्य हजार अध्यापक तथा गुरूजी भी नहीं कर सकते हैं।''*

सारणीः 1.4

जनगणना 1951–2011 के अनुसार भारत में साक्षरता दर में लिंग अंतराल[13]

वर्ष	कुल साक्षरता	पुरूष	महिला	अंतराल की दर
1951	**18.33**	**27.16**	**8.86**	**18.30**
1961	**28.33**	**40.40**	**15.35**	**25.05**
1971	**34.45**	**45.96**	**21.97**	**23.98**
1981	**43.57**	**56.38**	**29.76**	**26.62**
1991	**52.21**	**64.13**	**39.29**	**24.84**
2001	**65.38**	**75.85**	**54.16**	**21.70**
2011	**74.04**	**82.14**	**65.46**	**16.68**

स्रोतः भारत की जनगणना:1951–2011.

सारणीः 1.5

भारत में उच्च शिक्षा में विषयवार महिलाओं की प्रतिशत भागीदारी (1950–51 से 2015–16 तक)[14]

संकाय	1950-51	1970-71	1980-81	2000-01	2010-11	2015-16
कला	16.08	31.73	37.71	45.00	47.02	53.93
विज्ञान	7.11	17.78	28.82	36.36	43.15	49.57
वाणिज्य / प्रबंधन	0.55	3.68	15.89	30.45	39.14	46.18
शिक्षाशास्त्र	32.38	36.54	47.34	51.90	56.84	62.71
अभियंत्रण	0.16	1.01	3.84	20.60	27.97	27.84
चिकित्सा	16.34	22.84	24.36	45.03	50.58	60.47
कृषि - - -	-	-	-	20.50	27.03	27.34
पशुपालन विज्ञान	5.83	9.52	12.53	37.72	36.25	31.53
कानून	2.12	3.72	6.85	19.40	25.63	33.56

स्रोतः एआईसएचई 1950–51 से एआईसएचई 2015–16 तक

निष्कर्षः

आजादी के बाद 50 वर्षों की विकास यात्रा में देश में महिलाओं की शिक्षा स्वास्थ्य आर्थिक स्थिति और सामाजिक मान्यताओं के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन की लहर की सुगबुगाहट अवश्य लक्षित हुई है लेकिन इस विशाल और अनगिनत विविधताओं वाले देश में इस परिवर्तन का अंश नगण्य है। संविधान में महिलाओं को पुरूषों के समान ही अधिकार दिए है, अत्याचारों से दबी उनकी दयनीय जीवन स्थितियों को रूपांतरित करने और सामाजिक, आर्थिक तथा विधिक पहचान बनाने के लिए कई कल्याणकारी मान्यताएँ दी हैं लेकिन उनकी विकास की स्थिति और दशा आज भी चिंतनीय है। संविधान निर्माता तथा विकास की पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण करते समय सामाजिक योजना आयोग इससे पूर्णतः सहमत थे कि विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी मुहैया कराए बिना देश की समृद्धि की कल्पना करना नितांत अव्यावहारिक होगा।

महिलाओं के सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में अग्रणी रहने के कुछ प्रत्यक्ष रूप भी सामने आने लगे हैं। नौकरी और रोजगार के कारण सभी क्षेत्रों में महिलाएँ पहुँच रही है। राजनैतिक दृष्टि से भी महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण उपलब्ध हुआ है। संसद में भी महिलाएँ पहुँच रही है। देश के प्रायः हर नगर गाँव में महिलाओं के संगठन गतिशील हुए। महिलाओं के जीवन के बहुमुखी विकास आयामों के दरवाजे खुले हैं, खुलते जा रहे है और भविष्य का एक आकर्षक महत्वकांक्षी चित्र उपस्थित हो रहा है। लेकिन यह नितांत सत्य और प्रामाणिक तथ्य है कि महिलाओं पर अत्याचारों की विविधता तथा गंभीरता भी बढ़ी है। जिस गति से उनकी जीवन स्थितियों के लिए प्रगति और विकास के आयाम उपलब्ध कराए गए हैं।

संदर्भः

1. Vivekanand, Swami. 2016. 'Our Women' Advaita Ashrama, Belur Math, Kolkata. pp. 7.
2. **M.A. Mutabid,** Development Administration in Rural Government for agriculture Production 1960.
3. जोशी, गोपा. 2015. ''*भारत में स्त्री असमानताः एक विमर्श*'' कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ0–65.
4. डॉ. अमर्त्य सेन *''एक्सपेंशन ऑफ एंटाइटिलमेंट्स एण्ड कैपेबिलिटिज'' इन पॉवर्टी एण्ड फेमाइन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 1981.*
5. *भारत की जनगणना, 2011.*
6. *कुरूक्षेत्र, मई, 2021, पृ0 23*
7. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की रिपोर्ट, 2018.
8. वर्ल्ड बैंक की एक्सपर्ट मीरा चटर्जी की रिपोर्ट 'स्पायरिंग लाइब्स' पृ0. 48.
9. Man and Women in India,26th issue, National Statistics Office, Ministry of Statistics and programme Implimentation; Govt. of India and, Department of Justice, Ministry of Law and Justice, New Delhi.
10. Ibid.
11. Ibid.
12. *योजना, मई, 2015, पृ0 18–19.*
13. भारत की जनगणनाः1951–2011.
14. एआईसएचई 1950–51 से एआईसएचई 2015–16 तक।

◂◂ ▸▸

कामकाजी महिलाओं के परिवार में घरेलू व्यवस्था का बदलावः एक अध्ययन

सोनी कुमारी*
डॉ. संजय कुमार**

सार–

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के बदलते स्वरूप, घरेलू कार्यों के प्रबंधन, समय प्रबंधन, पारिवारिक सहयोग एवं कार्य–जीवन संतुलन का विश्लेषण करना था। वर्तमान समय में महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार में वृद्धि के कारण उनकी पारिवारिक एवं सामाजिक भूमिकाओं में व्यापक परिवर्तन आया है। महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ने के साथ घरेलू जिम्मेदारियों, संसाधन प्रबंधन एवं परिवार के सदस्यों के बीच कार्य–वितरण में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। यह अध्ययन बिहार राज्य के नवादा एवं नालंदा जिलों में किया गया। अध्ययन हेतु कुल 120 कामकाजी महिलाओं का चयन यादृच्छिक–सह–उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन पद्धति द्वारा किया गया। आँकड़ों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची, अर्द्ध–संरचित साक्षात्कार एवं केस स्टडी विधि का उपयोग किया गया। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण माध्य, मानक विचलन एवं स्वतंत्र नमूना टी–परीक्षण के माध्यम से किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से स्पष्ट हुआ कि कामकाजी महिलाएँ घरेलू संसाधनों के नियोजन एवं प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, किंतु घरेलू कार्यों एवं देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों का भार अभी भी अधिकतर महिलाओं पर केंद्रित है। पारिवारिक सहयोग, घरेलू जिम्मेदारियों का संतुलित वितरण, प्रभावी समय प्रबंधन एवं आधुनिक तकनीकी संसाधनों का उपयोग घरेलू व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक पाए गए। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि बेहतर सहयोगात्मक पारिवारिक वातावरण महिलाओं के कार्य–जीवन संतुलन एवं पारिवारिक संतुष्टि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

मूल शब्दः कामकाजी महिलाएँ, घरेलू व्यवस्था, परिवार संसाधन प्रबंधन, कार्य–जीवन संतुलन, समय प्रबंधन, पारिवारिक सहयोग, गृह विज्ञान।

वर्तमान वैश्वीकरण, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के दौर में भारतीय समाज तीव्र गति से सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। इन परिवर्तनों का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव महिलाओं की भूमिका में देखने को मिलता है। आज महिलाएँ केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि शिक्षा, प्रशासन, स्वास्थ्य, उद्योग, व्यापार, बैंकिंग, सूचना प्रौद्योगिकी तथा स्वरोजगार जैसे विविध क्षेत्रों में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं। महिलाओं की बढ़ती कार्यभागीदारी ने उनकी आर्थिक स्वायत्तता, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा निर्णय लेने की क्षमता को सुदृढ़ किया है। इसके साथ ही पारिवारिक संरचना, घरेलू व्यवस्था तथा पारिवारिक भूमिकाओं में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं।

बिमला एवं बरुआह (2020) ने वुमन इन फॅमिली रिसोर्स मैनेजमेन्ट ''ए लिटरेचर रिव्यू'' में परिवार संसाधन प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका का व्यापक विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि महिलाएँ घरेलू संसाधनों के नियोजन, उपयोग तथा संरक्षण में केंद्रीय भूमिका निभाती हैं, किंतु उनके घरेलू कार्यों का आर्थिक मूल्यांकन अभी भी पर्याप्त रूप से नहीं किया जाता है। अध्ययनकर्ताओं ने महिलाओं के घरेलू श्रम को सामाजिक एवं आर्थिक मान्यता प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया।[1]

सिंह एवं पट्टनायक (2020) ने भारत में महिलाओं के अवैतनिक घरेलू कार्यों का अध्ययन करते हुए पाया कि घरेलू कार्यों एवं देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों का अधिकांश भार महिलाओं पर ही रहता है। इस असमान कार्य–वितरण के कारण महिलाओं के रोजगार, करियर विकास तथा कार्य–जीवन संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में घरेलू कार्यों के समान वितरण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया।[2]

---

* शोधार्थी (गृह विज्ञान विभाग), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
** सहायक प्रोफेसर, टी. एस. कॉलेज, हिसुआ

जनिसो, शुक्ला एवं रेड्डी (2021) ने भारत के टाइम यूज सर्वे (2019) के आधार पर महिलाओं और पुरुषों के अवैतनिक घरेलू एवं देखभाल कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में घरेलू कार्यों में कहीं अधिक समय व्यतीत करती हैं तथा यह अंतर मुख्यतः सामाजिक मान्यताओं और लैंगिक भूमिकाओं के कारण बना हुआ है।[3]

विश्व विकास में प्रकाशित अध्ययन (2024) ने भारत में महिलाओं के आय–सृजन, अवैतनिक घरेलू कार्य तथा सामाजिक मान्यताओं के संबंध का विश्लेषण किया। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि घरेलू कार्यों की प्राथमिक जिम्मेदारी महिलाओं पर होने से उनकी श्रम–बाजार में भागीदारी सीमित होती है। जिन परिवारों में महिलाओं के रोजगार को सकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है, वहाँ घरेलू जिम्मेदारियों का अधिक संतुलित वितरण पाया गया।[4]

आद्यालकर एवं धावड़ (2025) ने कार्यरत महिलाओं की खाद्य एवं घरेलू प्रबंधन संबंधी व्यवहारों का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि प्रभावी समय प्रबंधन, भोजन नियोजन तथा घरेलू संसाधनों का उचित उपयोग कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक कार्यक्षमता को बढ़ाता है। आय, शिक्षा एवं पारिवारिक सहयोग घरेलू प्रबंधन की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक पाए गए।[5]

त्रिपाठी एवं तिवारी (2025) ने 21वीं सदी में गृह विज्ञान की बदलती भूमिका का विश्लेषण किया। अध्ययन के अनुसार आधुनिक गृह विज्ञान केवल घरेलू कार्यों तक सीमित न होकर संसाधन प्रबंधन, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य, डिजिटल तकनीक एवं सतत विकास से जुड़ा बहुआयामी विषय बन चुका है। अध्ययनकर्ताओं ने बदलती सामाजिक परिस्थितियों में गृह विज्ञान के सिद्धांतों की प्रासंगिकता पर बल दिया।[6]

बाजाज एवं अहमद (2025) ने भारतीय कामकाजी महिलाओं में कार्य–परिवार संतुलन पर एक नैरेटिव समीक्षा प्रस्तुत की। अध्ययन में बताया गया कि कामकाजी महिलाएँ नौकरी, मातृत्व एवं पारिवारिक दायित्वों के बीच संतुलन बनाने के लिए निरंतर प्रयास करती हैं। पारिवारिक सहयोग, कार्यस्थल का समर्थन तथा प्रभावी समय प्रबंधन कार्य–जीवन संतुलन के प्रमुख निर्धारक पाए गए।[7]

जैन एवं सहकर्मी (2025) ने भारतीय महिलाओं के कार्य–जीवन संतुलन एवं करियर प्रेरणा पर उपलब्ध अध्ययनों की व्यवस्थित समीक्षा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि कार्य–जीवन संतुलन महिलाओं के करियर विकास, मानसिक स्वास्थ्य एवं पारिवारिक संतुष्टि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। अध्ययन में लचीली कार्य व्यवस्था, संस्थागत सहयोग तथा पारिवारिक सहभागिता को महिलाओं के समग्र विकास के लिए आवश्यक बताया गया।[8] उपलब्ध अध्ययनों से स्पष्ट है कि पूर्व के कुछ वर्षों में अधिकांश अध्ययन कार्य–जीवन संतुलन, अवैतनिक घरेलू कार्य, संसाधन प्रबंधन तथा महिलाओं की आर्थिक भागीदारी पर केंद्रित रहे हैं। हालांकि बिहार के नवादा, गया एवं नालंदा जिलों की कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के बदलाव एवं प्रबंधन पर क्षेत्रीय स्तर का अनुभवजन्य अध्ययन सीमित है।

पारंपरिक भारतीय परिवारों में घरेलू कार्यों का दायित्व मुख्यतः महिलाओं पर केंद्रित रहा है, जबकि पुरुषों की भूमिका आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराने तक सीमित मानी जाती थी। किंतु वर्तमान समय में महिलाओं के रोजगार से जुड़ने के कारण घरेलू कार्यों के संगठन, समय प्रबंधन, संसाधनों के उपयोग तथा परिवार के सदस्यों के बीच जिम्मेदारियों के वितरण में परिवर्तन आया है। आधुनिक तकनीकी उपकरणों, बदलती सामाजिक सोच तथा परिवार के अन्य सदस्यों की बढ़ती सहभागिता ने घरेलू व्यवस्था को अधिक सहयोगात्मक एवं व्यवस्थित बनाने में योगदान दिया है। इसके बावजूद अधिकांश कामकाजी महिलाओं को घर और कार्यस्थल की दोहरी जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ता है, जिससे समयाभाव, मानसिक तनाव, शारीरिक थकान तथा कार्य–जीवन संतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

गृह विज्ञान के दृष्टिकोण से घरेलू व्यवस्था केवल दैनिक कार्यों के संचालन तक सीमित नहीं है, बल्कि उपलब्ध संसाधनों, समय, श्रम, आय तथा पारिवारिक संबंधों के समुचित एवं संतुलित प्रबंधन की प्रक्रिया है। प्रभावी घरेलू प्रबंधन परिवार के प्रत्येक सदस्य के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि बदलती सामाजिक परिस्थितियों में कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के स्वरूप, प्रबंधन की रणनीतियों तथा उनके समक्ष आने वाली चुनौतियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए।

अतः प्रस्तुत कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के बदलते स्वरूप, जिम्मेदारियों के पुनर्वितरण, समय एवं संसाधन प्रबंधन तथा कार्य–जीवन संतुलन का विश्लेषण करना है। साथ ही यह

अध्ययन गृह विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर प्रभावी घरेलू प्रबंधन के व्यावहारिक उपायों का सुझाव भी प्रस्तुत करेगा, जिससे परिवार की कार्यक्षमता, संतुष्टि तथा जीवन–स्तर में सुधार लाया जा सके।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व– वर्तमान समय में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार एवं आर्थिक स्वावलंबन में निरंतर वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं की पारिवारिक एवं सामाजिक भूमिकाओं में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज अधिकांश कामकाजी महिलाएँ कार्यस्थल की जिम्मेदारियों के साथ–साथ परिवार एवं घरेलू व्यवस्था का भी सफलतापूर्वक निर्वहन कर रही हैं। यद्यपि महिलाओं की यह दोहरी भूमिका उनके आत्मविश्वास, आर्थिक सशक्तिकरण एवं सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाती है, तथापि इससे समय प्रबंधन, मानसिक तनाव, शारीरिक थकान, कार्य–जीवन संतुलन तथा पारिवारिक सामंजस्य जैसी अनेक चुनौतियाँ भी उत्पन्न होती हैं।

आधुनिक परिवारों में घरेलू व्यवस्था का स्वरूप निरंतर बदल रहा है। संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवारों की संख्या बढ़ने, महिलाओं के रोजगार में वृद्धि तथा आधुनिक तकनीकी संसाधनों के उपयोग ने घरेलू कार्यों के संगठन एवं प्रबंधन को नई दिशा प्रदान की है। इसके बावजूद अनेक परिवारों में घरेलू कार्यों का मुख्य दायित्व अभी भी महिलाओं पर ही केंद्रित है, जिसके कारण उन्हें अतिरिक्त कार्यभार का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यह जानना आवश्यक है कि परिवारों में घरेलू जिम्मेदारियों का वितरण किस प्रकार हो रहा है, परिवार के अन्य सदस्यों की सहभागिता कितनी है तथा इन परिवर्तनों का महिलाओं के स्वास्थ्य, पारिवारिक संतुष्टि एवं जीवन की गुणवत्ता पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

गृह विज्ञान के दृष्टिकोण से यह अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह घरेलू संसाधनों, समय, श्रम एवं पारिवारिक संबंधों के प्रभावी प्रबंधन का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष न केवल कामकाजी महिलाओं की समस्याओं एवं चुनौतियों को समझने में सहायक होंगे, बल्कि घरेलू व्यवस्था को अधिक प्रभावी, संतुलित एवं सहयोगात्मक बनाने के लिए व्यावहारिक सुझाव भी प्रदान करेंगे। साथ ही यह अध्ययन नीति–निर्माताओं, शिक्षाविदों, गृह विज्ञान के अध्ययनकर्ताओं तथा परिवार परामर्शदाताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

अध्ययन के उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के बदलते स्वरूप का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत यह अध्ययन घरेलू कार्यों के प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका, उनके समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों तथा परिवार के सदस्यों के मध्य घरेलू जिम्मेदारियों के वितरण की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करेगा। साथ ही अध्ययन का उद्देश्य यह भी है कि कामकाजी महिलाओं के कार्य–जीवन संतुलन, पारिवारिक सहयोग तथा घरेलू संसाधनों के प्रबंधन का आकलन किया जाए। अध्ययन के आधार पर गृह विज्ञान के सिद्धांतों के अनुरूप ऐसे व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किए जाएँगे, जिनके माध्यम से घरेलू व्यवस्था को अधिक प्रभावी, संतुलित एवं परिवार–केंद्रित बनाया जा सके।

परिकल्पना–

- पण कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है।
- पपण घरेलू कार्यों की अधिक जिम्मेदारी कामकाजी महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है।
- पपपण परिवार के सदस्यों की सक्रिय सहभागिता एवं घरेलू जिम्मेदारियों का समान वितरण घरेलू संतुलन, पारिवारिक सामंजस्य तथा संतुष्टि के स्तर में वृद्धि करता है।

अध्ययन विधि– प्रस्तुत अध्ययन के लिए वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन डिजाइन अपनाया गया है। वर्णनात्मक अध्ययन डिजाइन के माध्यम से कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप, समय प्रबंधन, घरेलू जिम्मेदारियों के वितरण तथा कार्य–जीवन संतुलन की वास्तविक स्थिति का व्यवस्थित वर्णन किया गया। वहीं विश्लेषणात्मक अध्ययन डिजाइन के अंतर्गत विभिन्न आय वर्गों की कामकाजी महिलाओं के मध्य घरेलू व्यवस्था, पारिवारिक सहयोग, समय प्रबंधन एवं संतुष्टि स्तर में पाए जाने वाले अंतर का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन डिजाइन के माध्यम से अध्ययन की परिकल्पनाओं का परीक्षण करते हुए यह जानने का प्रयास किया गया कि घरेलू व्यवस्था में हुए परिवर्तन कामकाजी महिलाओं के पारिवारिक जीवन, स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र– प्रस्तुत अध्ययन बिहार राज्य के नवादा एवं नालंदा जिलों तक सीमित रखा गया। इन दोनों जिलों का चयन इसलिए किया गया क्योंकि यहाँ शहरी, अर्ध–शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की पर्याप्त संख्या उपलब्ध है। अध्ययन में कार्यालय, शिक्षण संस्थानों तथा स्वरोजगार से जुड़ी महिलाओं को

सम्मिलित किया गया, जिससे विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत महिलाओं की घरेलू व्यवस्था एवं पारिवारिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।

नमूना चयन– अध्ययन के लिए कुल 120 कामकाजी महिलाओं का चयन किया गया। उत्तरदात्रियों का चयन कार्यालय, शिक्षण तथा स्वरोजगार क्षेत्र से किया गया ताकि विभिन्न कार्यक्षेत्रों की महिलाओं के अनुभवों को अध्ययन में सम्मिलित किया जा सके। उत्तरदात्रियों के चयन हेतु यादृच्छिक–सह–उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन पद्धति का प्रयोग किया गया। इस पद्धति के अंतर्गत पहले अध्ययन के उद्देश्य के अनुरूप कार्यरत महिलाओं की पहचान की गई तथा तत्पश्चात उपलब्ध उत्तरदात्रियों में से यादृच्छिक रूप से प्रतिभागियों का चयन किया गया। इस पद्धति से अध्ययन की प्रतिनिधिकता तथा विश्वसनीयता सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।

डेटा संकलन के उपकरण

(1) साक्षात्कार अनुसूचीः अध्ययन के लिए 5–बिंदु लिकर्ट स्केल पर आधारित एक संरचित साक्षात्कार अनुसूचीध्प्रश्नावली तैयार की गई, जिसमें कुल 30 कथन सम्मिलित किए गए। इन कथनों के माध्यम से घरेलू व्यवस्था, समय प्रबंधन, घरेलू जिम्मेदारियों का वितरण, परिवार के सदस्यों का सहयोग, कार्य–जीवन संतुलन तथा पारिवारिक संतुष्टि जैसे प्रमुख आयामों का आकलन किया गया। प्रत्येक कथन पर उत्तरदात्रियों से उनकी सहमति या असहमति पाँच स्तरोंकृपूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत एवं पूर्णतः असहमतकृके आधार पर प्राप्त की गई।

(2) अर्द्ध–संरचित साक्षात्कारः मात्रात्मक आँकड़ों की पुष्टि एवं गहन जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से 10 कामकाजी महिलाओं के अर्द्ध–संरचित साक्षात्कार लिए गए। इन साक्षात्कारों के माध्यम से घरेलू कार्यों के प्रबंधन, समय के उपयोग, कार्यस्थल एवं परिवार के बीच संतुलन, पारिवारिक सहयोग तथा व्यक्तिगत अनुभवों से संबंधित गुणात्मक जानकारी प्राप्त की गई।

(3) केस स्टडीः– अध्ययन में 2–3 परिवारों का विस्तृत केस अध्ययन भी किया गया। इसके माध्यम से परिवार की दैनिक दिनचर्या, घरेलू कार्यों के विभाजन, निर्णय–निर्माण प्रक्रिया, संसाधनों के उपयोग तथा पारिवारिक संबंधों का गहन विश्लेषण किया गया। केस स्टडी से प्राप्त निष्कर्षों ने अध्ययन के गुणात्मक पक्ष को अधिक सुदृढ़ बनाया।

डेटा विश्लेषणः संग्रहित आँकड़ों का विश्लेषण मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों स्तरों पर किया गया। मात्रात्मक आँकड़ों का वर्गीकरण एवं सारणीकरण करने के पश्चात उनका विश्लेषण सांख्यिकीय पद्धति की सहायता से किया गया। इसके लिए माध्य, मानक विचलन तथा स्वतंत्र नमूना टी–परीक्षण का उपयोग किया गया, जिससे विभिन्न समूहों के मध्य पाए जाने वाले अंतर की सांख्यिकीय सार्थकता का परीक्षण किया जा सके। गुणात्मक आँकड़ों का विश्लेषण विषयगत विश्लेषण के माध्यम से किया गया। साक्षात्कार एवं केस स्टडी से प्राप्त उत्तरों को समान विषयों एवं प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकृत कर उनकी व्याख्या की गई। इस प्रकार मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के विश्लेषणों के समन्वय से अध्ययन के निष्कर्षों को अधिक विश्वसनीय, व्यापक एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया गया।

परिणाम– प्रस्तुत अध्ययन में नवादा एवं नालंदा जिलों की 120 कामकाजी महिलाओं से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। अध्ययन का उद्देश्य घरेलू व्यवस्था के बदलते स्वरूप, समय प्रबंधन, घरेलू जिम्मेदारियों के वितरण तथा कार्य–जीवन संतुलन का मूल्यांकन करना था। मात्रात्मक आँकड़ों का विश्लेषण माध्य, मानक विचलन एवं स्वतंत्र नमूना टी–परीक्षण द्वारा तथा गुणात्मक आँकड़ों का विश्लेषण विषयगत विश्लेषण के माध्यम से किया गया।

समय प्रबंधन						
कामकाजी महिला समूह	**संख्या**	**माध्य**	**मानक विचलन**	**टी–अनुपात**	**df**	**सार्थक अंतर**
उच्च आय	60	3.18	0.61	4.98	118	$p<0.01$
निम्न आय	60	3.71	0.55			
घरेलू कार्यों का नियोजन						
उच्च आय	60	3.24	0.65	5.12	118	$p<0.01$
निम्न आय	60	3.82	0.58			

पारिवारिक सहयोग						
उच्च आय	60	3.02	0.72	5.36	118	p<0.01
निम्न आय	60	3.68	0.60			
कार्य–जीवन संतुलन						
उच्च आय	60	3.10	0.69	5.41	118	p<0.01
निम्न आय	60	3.74	0.57			
घरेलू संतुष्टि						
उच्च आय	60	3.28	0.63	4.86	118	p<0.01
निम्न आय	60	3.81	0.54			
कुल स्कोर						
उच्च आय	60	3.16	0.52	6.15	118	p<0.01
निम्न आय	60	3.75	0.47			

सारणी–1 से स्पष्ट होता है कि मध्यम आय वर्ग की कामकाजी महिलाओं का घरेलू व्यवस्था एवं प्रबंधन का औसत स्कोर (टी= 6.15, df=118, $p<0.01$) निम्न आय वर्ग का माध्य=3.16 पाया गया, वहीं उच्च आय वर्ग माध्य=3.75 पाया गया जो कि तुलना में अधिक को दर्शाता है। दोनों आय वर्ग समूहों के मध्य पाया गया अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आय स्तर घरेलू व्यवस्था, समय प्रबंधन, पारिवारिक सहयोग तथा कार्य–जीवन संतुलन को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। अतः अध्ययन के परिणामों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था का स्वरूप परिवर्तनशील है। यद्यपि पारिवारिक सहयोग एवं आधुनिक संसाधनों के कारण घरेलू प्रबंधन में सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, फिर भी महिलाओं पर दोहरी जिम्मेदारियों का भार बना हुआ है। इसलिए घरेलू कार्यों के समान वितरण, प्रभावी समय प्रबंधन तथा परिवार–केंद्रित सहयोगात्मक वातावरण को बढ़ावा देना आवश्यक है।

चर्चा– प्रस्तुत अध्ययन में कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था के बदलते स्वरूप का विश्लेषण किया गया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार में वृद्धि ने उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया है, किंतु घरेलू कार्यों एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों का मुख्य भार अभी भी महिलाओं पर ही केंद्रित है। यह स्थिति कार्य–जीवन संतुलन को प्रभावित करती है तथा महिलाओं को समय प्रबंधन, मानसिक तनाव एवं शारीरिक थकान जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के अवैतनिक घरेलू श्रम, परिवार संसाधन प्रबंधन एवं कार्य–परिवार संतुलन की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। वर्तमान अध्ययन में पाया गया कि परिवार के सदस्यों का सहयोग, घरेलू कार्यों का समान वितरण एवं आधुनिक तकनीकी संसाधनों का उपयोग घरेलू व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक होते हैं।

इस प्रकार उच्च एवं निम्न आय स्तर एवं पारिवारिक सहयोग घरेलू प्रबंधन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक पाए गए। जिन परिवारों में घरेलू जिम्मेदारियों का संतुलित वितरण एवं सहयोगात्मक वातावरण उपलब्ध था, वहाँ महिलाओं का कार्य–जीवन संतुलन एवं पारिवारिक संतुष्टि स्तर बेहतर पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक परिवारों में घरेलू व्यवस्था केवल महिलाओं की जिम्मेदारी न होकर सभी सदस्यों की सामूहिक प्रक्रिया होनी चाहिए।

निष्कर्ष– प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कामकाजी महिलाओं के परिवारों में घरेलू व्यवस्था का स्वरूप तेजी से परिवर्तित हो रहा है। महिलाओं की बढ़ती आर्थिक भागीदारी ने परिवार के निर्णयों एवं संसाधन प्रबंधन में उनकी भूमिका को मजबूत किया है। हालांकि घरेलू कार्यों एवं देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों का असमान वितरण अभी भी एक प्रमुख चुनौती बना हुआ है। स्पष्ट है कि प्रभावी समय प्रबंधन, पारिवारिक सहयोग, संसाधनों का उचित उपयोग तथा घरेलू कार्यों का समान विभाजन कामकाजी महिलाओं के कार्य–जीवन संतुलन एवं पारिवारिक संतुष्टि को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः बदलती सामाजिक परिस्थितियों में घरेलू व्यवस्था को अधिक संतुलित एवं सहयोगात्मक बनाने की आवश्यकता है।

सुझाव

पण घरेलू कार्यों एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों का वितरण परिवार के सभी सदस्यों के बीच समान रूप से किया जाना चाहिए।

पपण पुरुषों एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों की घरेलू कार्यों में सक्रिय सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

पपपण कामकाजी महिलाओं के लिए समय प्रबंधन एवं तनाव प्रबंधन संबंधी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

पअण कार्यस्थलों पर महिलाओं के लिए लचीली कार्य व्यवस्था, मातृत्व सहयोग एवं परिवार–अनुकूल नीतियाँ विकसित की जानी चाहिए।

अण आधुनिक तकनीकी उपकरणों एवं डिजिटल संसाधनों के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे घरेलू कार्यों का भार कम हो सके।

अपण समाज में महिलाओं के घरेलू श्रम के महत्व को स्वीकार करने एवं उसे उचित सामाजिक सम्मान प्रदान करने की आवश्यकता है।

अपपण गृह विज्ञान के माध्यम से परिवार संसाधन प्रबंधन, स्वास्थ्य, पोषण एवं संतुलित जीवन शैली के प्रति जागरूकता बढ़ाई जानी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, ए. एवं वर्मा, बी. (2020) महिलाओं की भूमिका एवं परिवार संसाधन प्रबंधन का अध्ययन। भारतीय गृह विज्ञान शोध पत्रिका, 12(2), 45–52।
2. सिंह, आर. एवं पट्टनायक, एस. (2020) भारत में महिलाओं के अवैतनिक घरेलू कार्यों का विश्लेषण। महिला अध्ययन जर्नल, 8(1), 23–31।
3. जनिसो, शुक्ला एवं रेड्डी (2021) महिलाओं एवं पुरुषों के अवैतनिक घरेलू तथा देखभाल कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन। भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 15(2), 67–78।
4. विश्व विकास (2024) भारत में महिलाओं के आय–सृजन, अवैतनिक घरेलू कार्य एवं सामाजिक मान्यताओं का विश्लेषण। World Development, 168(1), 104–116।
5. आद्यालकर एवं धावड़ (2025) कार्यरत महिलाओं के खाद्य एवं घरेलू प्रबंधन संबंधी व्यवहारों का अध्ययन। जर्नल ऑफ होम साइंस एंड फैमिली स्टडीज, 18(1), 25–36।
6. त्रिपाठी एवं तिवारी (2025) 21वीं सदी में गृह विज्ञान की बदलती भूमिका। भारतीय गृह विज्ञान जर्नल, 42(1), 55–66।
7. बाजाज एवं अहमद (2025) भारतीय कामकाजी महिलाओं में कार्य–परिवार संतुलनः एक नैरेटिव समीक्षा। जर्नल ऑफ वुमेन स्टडीज एंड मैनेजमेंट, 10(2), 89–102।
8. जैन एवं सहकर्मी (2025) भारतीय महिलाओं के कार्य–जीवन संतुलन एवं करियर प्रेरणा पर व्यवस्थित समीक्षा। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च, 14(1), 40–52।

◀◀ ▶▶

हैजा, समाज और औपनिवेशिक शासनः मध्य प्रांत का एक ऐतिहासिक अध्ययन

हरिपाल*

यह शोध-पत्र उन्नीसवीं शताब्दी के औपनिवेशिक मध्य प्रांतों में औपनिवेशिक सरकार, स्वच्छता, हैजा और सार्वजनिक स्वास्थ्य के बीच संबंधों का अध्ययन करता है। यह इस बात पर भी जोर देता है कि हैजे का इतिहास उत्तर और मध्य भारत के व्यापक सामाजिक तथा राजनीतिक इतिहास को समझने के लिए कितना महत्वपूर्ण है। यह शोध-पत्र तर्क देता है कि हैजे के प्रकोप केवल स्थानीय पर्यावरणीय परिस्थितियों या स्वच्छता की कमी का परिणाम नहीं थे। इनके पीछे औपनिवेशिक सैन्य गतिविधियों, रेलवे नेटवर्क और तीर्थयात्रियों तथा अन्य लोगों की बड़े पैमाने पर आवाजाही की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। हैजे के शुरुआती पीड़ितों में अक्सर यूरोपीय सैनिक, अधिकारी और औपनिवेशिक प्रशासन से जुड़े लोग शामिल होते थे, जब लोगों और सैनिकों की आवाजाही काफी बढ़ गई थी। बड़ी भीड़, छावनियां, रेलवे स्टेशन और आवाजाही के अन्य प्रमुख केंद्र बीमारी के फैलने के महत्वपूर्ण केंद्र बन गए थे। इन स्थानों पर हैजे के मामलों का बार-बार अधिक संख्या में पाया जाना इस बात का संकेत देता है कि औपनिवेशिक सैन्य और प्रशासनिक नेटवर्क ने भी बीमारी के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह स्थिति औपनिवेशिक सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण विरोधाभास को सामने लाती है। एक ओर, साम्राज्यवादी सैन्य, रेलवे और प्रशासनिक नेटवर्क ने बीमारी के फैलने के नए रास्ते बनाए, वहीं दूसरी ओर बीमारी के प्रकोप के लिए स्थानीय लोगों को ही उनकी कथित गंदगी और खराब स्वच्छता व्यवस्था के कारण जिम्मेदार ठहराया गया। यह शोध-पत्र आगे यह भी दिखाता है कि हैजे के प्रकोपों ने राहत व्यवस्था में मौजूद भेदभाव और प्रशासनिक कमियों को उजागर किया। अंततः, हैजा केवल एक चिकित्सा आपातकाल नहीं था, बल्कि यह मध्य प्रांतों की गहरी शहरी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का भी प्रतिबिंब था। साथ ही, बार-बार होने वाले हैजे के प्रकोपों ने औपनिवेशिक शासन को मजबूत किया और स्वच्छता तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़ी नीतियों के विस्तार को उचित ठहराने का आधार प्रदान किया।

मध्य प्रांत एक ऐसे प्रांत के रूप में स्थापित किया गया था, जिसका प्रशासन एक चीफ कमिश्नर या स्थानीय प्रशासन के अधीन था। यह भारतीय उपमहाद्वीप के मध्य भाग में स्थित था और उस विस्तृत पहाड़ी तथा पठारी क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा था, जो उत्तर भारत के मैदानों को दक्कन के पठार से अलग करता था। उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की दिशा में इसका आकार लगभग एक आयत के समान था, हालांकि इसका निचला भाग ऊपरी भाग की तुलना में अधिक चौड़ा था।[1] उत्तर से दक्षिण तक इसकी अधिकतम लंबाई लगभग 500 मील और पूर्व से पश्चिम तक इसकी चौड़ाई भी लगभग 500 मील थी। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 1,15,000 वर्ग मील था। इसमें से लगभग 81,095 वर्ग मील ब्रिटिश शासन के अधीन था, जबकि शेष क्षेत्र देशी रियासतों और सामंती शासकों के अधीन था।[2] मध्य प्रांत की सीमाएं उत्तर और उत्तर-पश्चिम में मध्य भारत की रियासतों से लगती थीं। सागर जिले की एक छोटी-सी सीमा संयुक्त प्रांत से जुड़ी हुई थी। पश्चिम में इसकी सीमा भोपाल और इंदौर की रियासतों तथा बॉम्बे प्रेसीडेंसी के खंडेश जिले से लगती थी। दक्षिण में इसकी सीमा बरार, हैदराबाद के निजाम के क्षेत्रों तथा मद्रास प्रेसीडेंसी की बड़ी जमींदारियों से जुड़ी हुई थी। पूर्व में इसकी सीमा मद्रास क्षेत्र और बंगाल की सहायक या अधीनस्थ रियासतों से लगती थी।[3]

1881 से 1891 के बीच कुल मौतों में हैजे से होने वाली मौतों का हिस्सा लगभग 5 प्रतिशत था, जबकि 1891 से 1901 के बीच यह बढ़कर 7 प्रतिशत हो गया। 1885, 1889, 1891, 1892, 1896, 1897 और 1900 में हैजे की गंभीर महामारियां फैलीं।[4] इनमें से प्रत्येक वर्ष इस बीमारी से 20,000 से अधिक मौतें दर्ज की गईं। सबसे अधिक मौतें 1900 में हुईं, जब लगभग 75,000 लोगों की मृत्यु हैजे से हुई। उस समय पानी की भारी कमी थी।[5] शुरुआत में जब प्लेग के छोटे और अलग-अलग मामले सामने आए, तो उन्हें तुरंत पहचान लिया गया और घरों को अलग करके तथा कीटाणुशोधन के माध्यम से बीमारी को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर लिया गया। लेकिन जब यह बीमारी मध्य प्रांतों में स्थायी रूप से फैल गई, तो अनिवार्य सरकारी उपायों को बंद कर दिया गया। इसका कारण यह था कि जनता इन उपायों का कड़ा विरोध करती थी और ये उपाय बीमारी को पूरी तरह रोकने के बजाय केवल उसके फैलाव को कुछ समय के लिए धीमा कर पाते थे।[6] इस समय तक मध्य प्रान्त में हैजा का प्रमुख कारण अकाल और पर्यावरणीय कारण महत्त्वपूर्ण रहे. अक्टूबर 1899 से नवंबर 1900 तक सभी जिलों में अकाल की स्थिति बनी रही। वर्षा की कमी के कारण हैजा, पेचिश, दस्त और दूषित या खराब पानी से होने वाली अन्य बीमारियों की गंभीर महामारियां फैल गईं। इस अकाल का प्रशासन बेहद उदार और प्रभावी था। अकाल राहत पर

* सीनियर रिसर्च फेलो, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सीधे तौर पर लगभग 4½ करोड़ रुपये खर्च किए गए। इसके अलावा अप्रत्यक्ष खर्च और लगान में दी गई छूट को मिलाकर लगभग 1 करोड़ 30 लाख रुपये की अतिरिक्त राशि खर्च हुई।[7]

1885 में हैजे से कुल 63,114 मौतें हुईं। यह प्रति हजार आबादी पर 6.64 की मृत्यु-दर थी। 1869 के बाद, जब मृत्यु-दर 10.50 प्रति हजार तक पहुंच गई थी, मध्य प्रांतों में हैजे से होने वाली यह सबसे अधिक मृत्यु-दर थी। 1889, 1896 और 1897 में भी हैजे की गंभीर महामारियां फैली थीं। उन वर्षों में मृत्यु-दर क्रमशः 5.96, 5.58 और 6.01 प्रति हजार रही थी। इस वर्ष हैजे का मौसमी फैलाव पहले की महामारियों जैसा ही रहा। जून वह महीना था जिसमें सबसे अधिक मौतें हुईं। जनवरी में केवल 162 मौतें दर्ज हुईं, लेकिन इसके बाद बीमारी तेजी से बढ़ती गई। जून में मौतों की संख्या बढ़कर 20,158 हो गई। इसके बाद इसमें कमी आने लगी—जुलाई में 13,148, अगस्त में 7,893, सितंबर में 1,197 और अक्टूबर में 112 मौतें हुईं। नवंबर में केवल 3 मौतें दर्ज की गईं और इसके बाद महामारी लगभग समाप्त हो गई। इस प्रकार वर्ष के शुरुआती दो महीने और अंतिम चार महीने हैजे के सबसे कम प्रकोप वाले महीने रहे। पहले छह महीनों में हैजे के बढ़ने के साथ असामान्य गर्मी और सूखा भी था। जुलाई के दूसरे सप्ताह तक मानसून की स्थिति स्थापित नहीं हुई थी। इसके बाद बारिश शुरू होने पर बीमारी तेजी से कम होने लगी। ऐसा माना गया कि संक्रमण छत्तीसगढ़ में उड़ीसा और देशी रियासतों के रास्ते आया, जबकि पश्चिमी क्षेत्रों में यह बरार और इंदौर से पहुंचा। मध्य प्रांतों में बीमारी के तेजी से फैलने में पानी की कमी, दूषित जल-स्रोत और सामान्य अभाव की स्थिति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[8]

बीमारी से निपटने के लिए बहुत गंभीर प्रयास किए गए। जहां पानी की आपूर्ति पर नियंत्रण किया जा सकता था, वहां ये उपाय सबसे अधिक सफल रहे। यह उल्लेखनीय है कि लोक निर्माण विभाग के शिविरों में हैजे का प्रकोप वास्तव में मजबूत पकड़ नहीं बना सका। वहां हैजे से होने वाली मौतें औसत आबादी के प्रति हजार केवल **0.8** थीं। इन शिविरों में पानी को शुद्ध किया जाता था और संक्रमित मजदूरों के समूहों को अलग रखा जाता था। इन उपायों से सामान्यतः महामारी को रोकने में सफलता मिली। हालांकि, नागरिक रसोई और गांवों में राहत पाने वाले लोगों पर इसी प्रकार का नियंत्रण रखना संभव नहीं था। इस बात की काफी संभावना थी कि हैजे से हुई कई मौतें आधिकारिक रूप से हैजे के रूप में दर्ज नहीं की गईं। इसका एक कारण यह था कि मार्च और अप्रैल में जब हैजा व्यापक रूप से फैलने लगा, तो अन्य कारणों से दर्ज होने वाली मृत्यु-दर भी बढ़ गई। वहीं सितंबर और अक्टूबर में जब हैजा कम होने लगा, तो सामान्य मृत्यु-दर भी घट गई।[9]

इस वर्ष मध्य प्रांतों में हैजे की गंभीर महामारियों के दौरान प्रभावित क्षेत्रों में पीने के पानी के लिए इस्तेमाल होने वाले सभी कुओं, छोटे तालाबों और झिरियों को पोटैशियम परमैंगनेट से नियमित रूप से कीटाणुरहित किया गया। अकाल-राहत शिविरों में भी यह उपाय अपनाया गया। रिपोर्ट के अनुसार, इस प्रक्रिया के सामान्यतः अच्छे परिणाम मिले। कई जगहों पर कुओं को कीटाणुरहित करने के बाद हैजे के मामलों में स्पष्ट कमी आई और कुछ स्थानों पर कुछ ही दिनों में बीमारी पूरी तरह समाप्त हो गई। जबलपुर के सिविल सर्जन लेफ्टिनेंट-कर्नल एच. के. मैके के अनुसार, कुओं में पोटैशियम परमैंगनेट डालना हैजे के प्रसार को रोकने में बहुत सहायक था। स्थानीय लोग भी इस उपाय पर विश्वास करने लगे थे और इसे 'लाल दवाई' के नाम से जानते थे। रायपुर के सिविल सर्जन लेफ्टिनेंट-कर्नल जे. एल. पॉयनडर ने बताया कि पूरे जिले में इस उपाय का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया। लोगों में इसके प्रभाव को लेकर इतना विश्वास पैदा हो गया था कि अलग-अलग वर्गों के लोग स्वयं कुओं के उपचार के लिए दवा की मांग करने लगे थे। अकाल-राहत शिविरों में भी हैजा फैलते ही इसका इस्तेमाल किया जाता था। रायपुर के डिप्टी कमिश्नर ई. ए. डीब्रेट के अनुसार, कुओं को नियमित रूप से पोटैशियम परमैंगनेट से कीटाणुरहित करने से हैजे को खत्म करने में बहुत मदद मिली। लोग धीरे-धीरे इस कीटाणुनाशक के लाभों को समझने लगे थे और अपने कुओं का उपचार करवाने के लिए उत्सुक रहते थे।[10]

सागर के डिप्टी कमिश्नर आर. सी. एच. मॉस किंग ने बताया कि कुओं को कीटाणुरहित करने का बीमारी पर सीधा प्रभाव दिखाई देता था। कई गांवों में हैजे का एक मामला सामने आने के तुरंत बाद कुओं में पोटैशियम परमैंगनेट डाला गया और उसके बाद कोई नया मामला सामने नहीं आया। छिंदवाड़ा में शहर के 43 कुओं और पूरे जिले के 654 कुओं को नियमित रूप से इस प्रक्रिया से उपचारित किया गया। इनमें से 130 कुएं शहरों में थे। सिविल सर्जन मेजर एफ. ओ. पिंटो के अनुसार, पोटैशियम परमैंगनेट के इस्तेमाल से स्थानीय हैजे के प्रकोप जल्दी कम हुए और बीमारी तेजी से समाप्त हुई। नरसिंहपुर के सिविल मेडिकल ऑफिसर लेफ्टिनेंट जी. मर्फी के अनुसार, पानी के सभी स्रोतों को बार-बार पोटैशियम परमैंगनेट से कीटाणुरहित करना हैजे को नियंत्रित करने का अत्यंत महत्वपूर्ण उपाय था। उन्होंने यह भी कहा कि जब प्रशिक्षित टीकाकर्मी पानी की सही तरीके से सफाई करते थे, तो बीमारी पर तुरंत नियंत्रण हो जाता था और दो से पांच दिनों में हैजा समाप्त हो जाता था। नरसिंहपुर जिले में बरसात के मौसम में फैले हैजे के प्रकोप को काफी हद तक सफलतापूर्वक

नियंत्रित किया गया। अधिकारियों का मानना था कि इस अनुभव ने पानी की आपूर्ति को पोटैशियम परमैंगनेट से कीटाणुरहित करने की उपयोगिता को साबित किया।[11]

वर्धा में भी पानी की पूरी आपूर्ति को नियमित रूप से पोटैशियम परमैंगनेट से उपचारित किया गया। आसपास के गांवों से हैजे के कई मामले वर्धा में आए, लेकिन शहर में बीमारी का प्रसार नहीं हुआ। इसका कारण शहर की जल-आपूर्ति का नियमित और पूरी तरह से कीटाणुशोधन था। उस समय वर्धा के आसपास के कई गांवों में हैजा फैला हुआ था और नदी का पानी भी दूषित था। इसके बावजूद शहर में बीमारी नहीं फैली। अधिकारियों के अनुसार, इससे यह स्पष्ट हुआ कि पानी को अच्छी तरह से कीटाणुरहित करने से हैजे के प्रसार को रोका जा सकता था। हिंगनघाट में शुरुआत में जलाशय को कीटाणुरहित करने से बीमारी पर पर्याप्त नियंत्रण नहीं हुआ। बाद में पता चला कि शहर में आने वाले पूरे पानी का सही तरीके से उपचार नहीं किया जा रहा था और पुराने शहर के गरीब लोग नदी का पानी इस्तेमाल कर रहे थे। जब इन कमियों को दूर किया गया, तो हैजे के मामलों में उल्लेखनीय कमी आई।[12]

पूरे वर्ष मध्य प्रांतों में हैजा फैला रहा और इस बीमारी से होने वाली मृत्यु-दर 1921 के बाद सबसे अधिक रही। 1921 में हैजे से 58,333 मौतें दर्ज की गई थीं, जबकि इस वर्ष 23,250 मौतें हुईं। इसके मुकाबले 1929 में हैजे से केवल 6,168 मौतें दर्ज की गई थीं। इस बीमारी का सबसे गंभीर प्रकोप बरार क्षेत्र में हुआ, जहां 12,962 मौतें दर्ज की गईं।[13] केवल बैतूल जिला ऐसा था जहां हैजे का प्रकोप नहीं हुआ। सबसे अधिक व्यापक रूप से यह बीमारी यवतमाल जिले में फैली, जहां 632 गांव प्रभावित हुए। बीमारी के प्रसार को रोकने और संक्रमित लोगों को चिकित्सा सहायता देने के लिए आवश्यक कदम तेजी और तत्परता के साथ उठाए गए। तीन महीने के लिए 12 अतिरिक्त महामारी-चिकित्सालयों को मंजूरी दी गई।[14] इस वर्ष हैजे से बचाव के लिए कुल 2,53,043 टीकाकरण किए गए, जबकि पिछले वर्ष यह संख्या 1,35,056 थी। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सागर जिले के अकाल-राहत शिविरों में, जहां बीमारी का काफी प्रकोप था, हैजे का एक भी मामला सामने नहीं आया। सरकार ने निदेशक की इस बात से सहमति जताई कि यह हैजा-रोधी टीकाकरण की उपयोगिता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। सरकार ने यह भी उम्मीद की कि इसके प्रचार-प्रसार के लिए इस अनुभव का अधिकतम उपयोग किया जाएगा। महत्वपूर्ण रेलवे जंक्शनों पर कुंभ और माघ मेलों में जाने वाले तीर्थयात्रियों को हैजा-रोधी टीके लगाने की व्यवस्था भी जारी रखी गई।[15] इस वर्ष 39 महामारी-चिकित्सालयों ने अपना काम जारी रखा। इसके अलावा, हैजे के प्रकोप से निपटने के लिए 12 अस्थायी चिकित्सालयों को भी मंजूरी दी गई। रेलवे स्टेशनों पर तीर्थयात्रियों के टीकाकरण के लिए 8 अतिरिक्त चिकित्सालय स्थापित किए गए।[16] सरकार ने स्वास्थ्य निदेशक की इस बात से सहमति जताई कि इन चिकित्सालयों ने न केवल महामारियों से निपटने में प्रभावी भूमिका निभाई, बल्कि ग्रामीण आबादी तक सामान्य चिकित्सा सुविधाओं को भी पहुंचाने का काम किया। हालांकि, इन चिकित्सालयों की संख्या बढ़ाने और उनकी बेहतर निगरानी का प्रश्न आर्थिक स्थिति सुधरने तक टालना पड़ा। इस वर्ष स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों ने 5,735 गांवों का दौरा किया और 95,607 मरीजों का इलाज किया। हालांकि, महामारी के प्रकोप से निपटने में कर्मचारियों की व्यस्तता के कारण उनकी सामान्य गतिविधियां कुछ हद तक प्रभावित हुईं। स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता और बीमारियों की रोकथाम के लिए भी बड़े स्तर पर काम किया गया। इस कार्य में स्वास्थ्य प्रचार अधिकारियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[17]

इस वर्ष कुल 5,25,345 मौतें दर्ज की गईं, जिससे प्रति 1,000 आबादी पर मृत्यु-दर 37.76 रही। पिछले वर्ष कुल 4,74,872 मौतें दर्ज हुई थीं और मृत्यु-दर 34.13 प्रति हजार थी। पिछले पांच वर्षों की औसत मृत्यु-दर 32.14 प्रति हजार थी। पिछले वर्ष की तुलना में लगभग सभी जिलों में मृत्यु-दर बढ़ी। केवल छिंदवाड़ा में 3.22 और नागपुर में 0.79 की कमी दर्ज की गई।[18] मृत्यु-दर में सबसे अधिक वृद्धि यवतमाल (18.75), निमाड़ (17.96), होशंगाबाद (9.14), अकोला (7.75) और बैतूल (7.51) में हुई। इस वर्ष सबसे अधिक मृत्यु-दर निमाड़ (56.51), यवतमाल (53.49), अकोला (44.72), होशंगाबाद (42.35) और बुलढाणा (41.07) में दर्ज की गई। यवतमाल में मृत्यु-दर अधिक होने का मुख्य कारण हैजा था।[19] सबसे कम मृत्यु-दर बालाघाट में 27.77 प्रति हजार रही। मंडला (29.35), भंडारा (31.08), बिलासपुर (32.69) और रायपुर (32.99) में भी मृत्यु-दर प्रांत के औसत की तुलना में काफी कम रही। इसका मुख्य कारण यह था कि इन जिलों में वर्ष के दौरान कोई गंभीर महामारी नहीं फैली। यह भी ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न बीमारियों से मृत्यु-दर काफी अधिक होने के बावजूद जन्म-दर मृत्यु-दर से 9.98 प्रति हजार अधिक रही। इस वर्ष सबसे अधिक मौतें सितंबर महीने में दर्ज की गईं, जिसका मुख्य कारण बड़े पैमाने पर फैला हैजा था। वहीं सबसे कम मृत्यु-दर फरवरी महीने में रही।[20]

रिपोर्ट किए गए पूरे वर्ष में मध्य प्रांतों में हैजा फैला रहा। पिछले वर्ष की तुलना में इस बीमारी से होने वाली मौतों में काफी वृद्धि हुई। वास्तव में, 1921 के बाद यह हैजे से होने वाली मौतों की सबसे अधिक संख्या थी। 1921 में हैजे से 58,333 मौतें दर्ज की गई थीं। इस वर्ष हैजे से कुल 23,250 मौतें हुईं और मृत्यु-दर प्रति 1,000 आबादी पर 1.67 रही। इसके मुकाबले 1929 में हैजे से 6,168 मौतें हुई थीं और मृत्यु-दर 0.44 प्रति हजार थी। हैजे का सबसे गंभीर प्रकोप बरार डिवीजन में हुआ, जहां 12,962 मौतें दर्ज की गईं। सबसे

अधिक मौतें यवतमाल जिले में 8,690 हुईं। इसके अलावा अकोला में 2,030, जबलपुर में 1,983, अमरावती में 1,727, निमाड़ में 1,365, नागपुर में 1,354, बिलासपुर में 1,176, वर्धा में 1,143 और चांदा में 1,043 मौतें दर्ज की गईं। बैतूल जिला हैजे से पूरी तरह मुक्त रहा। छिंदवाड़ा में 14 और दुर्ग में 13 मौतें दर्ज की गईं।[21] इस वर्ष हैजे का प्रकोप दो प्रमुख चरणों में दिखाई दिया। पहली लहर मार्च से अगस्त तक चली, जिसमें रायपुर, बिलासपुर और जबलपुर डिवीजन के जिले अधिक प्रभावित हुए। दूसरी लहर अगस्त से अक्टूबर के बीच आई, जिसमें निमाड़, नागपुर डिवीजन और बरार क्षेत्र सबसे अधिक प्रभावित हुए। जनवरी में निमाड़, बिलासपुर, दुर्ग और यवतमाल में हैजा फैला हुआ था। फरवरी में जबलपुर, मंडला, होशंगाबाद, नरसिंहपुर और छिंदवाड़ा प्रभावित हुए, जबकि निमाड़ और दुर्ग में बीमारी का प्रकोप कम हो गया। मार्च में संक्रमण चांदा, सागर, दमोह और सिवनी तक फैल गया।[22]

अप्रैल से जुलाई के बीच रायपुर, बिलासपुर, यवतमाल और जबलपुर डिवीजन के लगभग सभी जिलों से बड़ी संख्या में मामले सामने आए। अगस्त में बीमारी का प्रकोप बहुत व्यापक हो गया और इस महीने 5,155 मौतें हुईं। इस समय नरसिंहपुर और बैतूल को छोड़कर प्रांत के लगभग सभी जिलों में संक्रमण फैल चुका था। महामारी सितंबर में अपने चरम पर पहुंची, जब 8,067 मौतें दर्ज की गईं। नवंबर तक बीमारी लगभग समाप्त हो गई और उस महीने केवल 626 मौतें दर्ज हुईं।[23] दिसंबर में सागर, निमाड़, यवतमाल और बुलढाणा से कुछ अलग-अलग मामले सामने आए।[24] जिन गांवों से हैजे की सूचना मिली, उनमें यवतमाल सबसे अधिक प्रभावित था। यहां 632 गांवों में बीमारी फैली। इसके बाद अकोला और जबलपुर में 233-233, निमाड़ में 193, अमरावती में 188 और रायपुर में 144 गांव प्रभावित हुए। यवतमाल में वर्धा और पेंगंगा नदियों के किनारे बसे गांव विशेष रूप से प्रभावित हुए। जब तक लोग अपने पीने के पानी के लिए नदियों और नालों पर निर्भर रहेंगे, तब तक बीमारी को रोकना कठिन रहेगा। कुओं की तरह नदियों और नालों के पानी को आसानी से कीटाणुरहित नहीं किया जा सकता था। रिपोर्ट के अनुसार, हैजे की रोकथाम का स्थायी समाधान सुरक्षित पेयजल की व्यवस्था थी। जब तक इस दिशा में सुधार नहीं किया जाता, तब तक सरकार द्वारा अपनाए गए अन्य सभी रोकथाम के उपाय केवल अस्थायी साबित होंगे।[25] 1901 की जनगणना के अनुसार पूरे मध्य प्रांत में निम्न मौतें हुयीं:[26]

तालिका संख्या: 1. मध्य प्रांत में वर्ष 1877-1896 तक कॉलरा से होने वाली मौतें. स्रोत: *सेंसेक्स रिपोर्ट ऑफ़ इंडिया 1901.*

वर्ष	मध्य प्रांत में कॉलरा से होने वाली मौतें
1877	3,418
1878	40,985
1879	27,515
1880	330
1881	9,140
1882	11,932
1883	16,235
1884	149
1885	21,868
1886	16,679
1887	12,578
1888	921
1889	52,588
1890	4,787
1891	21,312
1892	39,972
1893	557
1894	7,043
1895	15,506
1896	52,985

मध्य प्रांतों में हैजा अक्सर बाहर से आता था, हालांकि कुछ स्थानों पर संक्रमण के स्रोत का निश्चित रूप से पता नहीं लगाया जा सका। जबलपुर, छिंदवाड़ा, बिलासपुर, नरसिंहपुर और होशंगाबाद में हैजा उन तीर्थयात्रियों के माध्यम से आया जो जनवरी 1930 में इलाहाबाद में आयोजित कुंभ मेले से लौटे थे। भंडारा और बालाघाट में बीमारी पंढरपुर से लौटने वाले तीर्थयात्रियों के माध्यम से पहुंची, जबकि निमाड़ में संक्रमण इंदौर राज्य से आया। इससे पता चलता है कि तीर्थयात्रा और लोगों की बड़े पैमाने पर आवाजाही बीमारी के प्रसार का एक महत्वपूर्ण माध्यम थी।[27] बीमारी को फैलने से रोकने और मरीजों को चिकित्सा सहायता देने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए गए। गंभीर रूप से प्रभावित जिलों में अतिरिक्त महामारी-चिकित्सालय भेजे गए। जबलपुर और यवतमाल में छह-छह अतिरिक्त महामारी-चिकित्सालय स्थापित किए गए। स्थिति से निपटने के लिए सरकार ने तीन महीने की अवधि के लिए 12 अतिरिक्त अस्थायी महामारी-चिकित्सालयों को मंजूरी दी। इन चिकित्सालयों में नियुक्त सहायक चिकित्सा अधिकारियों की जिम्मेदारी मरीजों का इलाज करना, हैजा-रोधी टीकाकरण करना, पानी की सफाई और कीटाणुशोधन करना तथा अन्य सावधानियां बरतना था।[28] कुओं में पोटैशियम परमैंगनेट डालने और दवाइयां बांटने के लिए टीकाकरण कर्मचारियों का भी उपयोग किया गया। पुलिस अधिकारियों ने भी इस काम में महत्वपूर्ण सहायता दी। जबलपुर जिले में प्रत्येक सहायक चिकित्सा अधिकारी के साथ एक टीकाकर्मी और दो सफाईकर्मी लगाए गए। प्रत्येक तहसील में एक नायब तहसीलदार को चिकित्सा अधिकारी के साथ दौरे के लिए नियुक्त किया गया। तहसील मुख्यालयों पर एक पुलिस कांस्टेबल भी सहायता के लिए साथ रहता था। स्वास्थ्य प्रचार अधिकारियों को जबलपुर और यवतमाल भेजा गया, ताकि वे लोगों को जागरूक करने और टीकाकरण का काम कर सकें।[29] सागर जिले में हैजा काफी फैला हुआ था, लेकिन अकाल-राहत कार्यों में लगे शिविरों में हैजे का एक भी मामला सामने नहीं आया। इसका मुख्य कारण पानी की नियमित सफाई और कीटाणुशोधन तथा सभी मजदूरों और कर्मचारियों का हैजा-रोधी टीकाकरण था। रिपोर्ट के अनुसार, इन उपायों के कारण बहुत से लोगों की जान बचाई गई, जो यदि अपने गांवों में रहते तो संभवतः हैजे का शिकार हो सकते थे। सागर के डिप्टी कमिश्नर ने राहत शिविरों में हैजे से पूर्ण सुरक्षा को हैजा-रोधी टीकाकरण की उपयोगिता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बताया।[30]

हैजा-रोधी टीकाकरण के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ रहा था और वे इसे बीमारी से बचाव का प्रभावी उपाय मानने लगे थे। इस वर्ष कुल 2,53,043 लोगों का टीकाकरण किया गया, जबकि पिछले वर्ष यह संख्या 1,35,056 थी। इनमें से सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों ने 1,39,845 टीकाकरण किए। चिकित्सा विभाग के कर्मचारियों ने 98,659 टीकाकरण किए। निजी डॉक्टरों ने 14,539 टीकाकरण किए। सबसे अधिक टीकाकरण यवतमाल में 55,570 हुआ। इसके बाद जबलपुर में 48,025, सागर में 22,227, अमरावती में 20,759 और अकोला में 14,740 टीकाकरण किए गए। इस प्रकार, 1930 के हैजे के प्रकोप ने यह दिखाया कि बीमारी का प्रसार केवल स्थानीय स्वच्छता की समस्या नहीं था। नदियों और असुरक्षित जल-स्रोतों, तीर्थयात्राओं, लोगों की आवाजाही और अलग-अलग क्षेत्रों के बीच संपर्क ने भी हैजे के फैलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वहीं, औपनिवेशिक प्रशासन ने महामारी-चिकित्सालयों, पुलिस, स्वास्थ्य कर्मचारियों, जल-कीटाणुशोधन और टीकाकरण के माध्यम से बीमारी को नियंत्रित करने का प्रयास किया।[31]

निष्कर्ष

औपनिवेशिक मध्य प्रांतों में हैजे का इतिहास केवल एक बीमारी या महामारी का इतिहास नहीं था, बल्कि यह औपनिवेशिक शासन, पर्यावरण, जल-स्रोतों, जनसंख्या की आवाजाही और सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के बीच जटिल संबंधों को भी सामने लाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से लेकर बीसवीं शताब्दी के मध्य तक हैजा बार-बार बड़े पैमाने पर फैलता रहा और कई बार इसने हजारों लोगों की जान ली। 1890 के दशक में हैजे की गंभीर महामारियों से लेकर 1900 में लगभग 75,000 मौतों और बाद के वर्षों में 1921 तथा 1930 के बड़े प्रकोपों तक, यह बीमारी मध्य प्रांतों के सामाजिक जीवन और प्रशासन के लिए एक गंभीर चुनौती बनी रही। इन महामारियों के पीछे केवल स्थानीय गंदगी या स्वच्छता की कमी जिम्मेदार नहीं थी। अकाल, सूखा, पानी की कमी और दूषित जल-स्रोतों ने बीमारी के प्रसार को तेज किया, लेकिन तीर्थयात्राओं, रेलवे, सैन्य गतिविधियों और लोगों की लगातार आवाजाही ने भी संक्रमण को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1930 के प्रकोप में कुंभ मेले से लौटने वाले तीर्थयात्रियों के माध्यम से कई जिलों में संक्रमण फैलना इसका स्पष्ट उदाहरण है। औपनिवेशिक प्रशासन ने महामारी-चिकित्सालयों, अस्थायी चिकित्सा केंद्रों, पुलिस और स्वास्थ्य कर्मचारियों की सहायता, जल-स्रोतों के कीटाणुशोधन तथा बड़े पैमाने पर हैजा-रोधी टीकाकरण के माध्यम से बीमारी को नियंत्रित करने का प्रयास किया। सागर के राहत शिविरों और वर्धा जैसे क्षेत्रों के अनुभवों से स्पष्ट हुआ कि सुरक्षित जल-आपूर्ति और टीकाकरण से महामारी को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता था। फिर भी, इन उपायों की सफलता असमान रही और ग्रामीण आबादी अक्सर असुरक्षित जल-स्रोतों तथा सीमित चिकित्सा सुविधाओं पर निर्भर रही। अतः हैजा औपनिवेशिक मध्य प्रांतों में केवल

एक चिकित्सा संकट नहीं था, बल्कि यह गरीबी, अकाल, जल-संकट, प्रशासनिक सीमाओं और औपनिवेशिक सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों की असमानताओं का भी प्रतिबिंब था।

संदर्भ एवं टिपण्णी

1. 'इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडियाः सेंट्रल प्रोविन्सेस. (कलकत्ताः 1908), पृष्ठ 1.
2. उपरोक्त, पृष्ठ 1. अधिक विवरण के लिए देखिए, एस. सी. टाउनसेंड, रिपोर्ट आन द एपिडेमिक ऑफ कॉलरा ऑफ़ 1875, 1876 इन सेंट्रल प्रोविम्प्रेस, (नागपुर: 1878), पृष्ठ 25-35.
3. उपरोक्त, पृष्ठ 1.
4. मार्क हैरिसन, ए ड्रेडफुल स्कर्ज: कॉलेरा इन अर्ली नाइन्टीन्थ-सेंचुरी इंडिया," मॉडर्न एशियन स्टडीज, भाग 54, न० 2, (2020), पृष्ठ 502-552. हैरिसन कहते हैं कि 1817-1821 के बीच भारतीय उपमहाद्वीप में हैजा (कॉलेरा) की भीषण महामारी फैली, जिसने प्रथम वैद्धिक हैजा महामारी (First Cholera Pandemic) की शुरुआत की। इस महामारी का सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा, लेकिन इतिहास में इसे अपेक्षित महत्व नहीं मिला। प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी ने इसे प्राकृतिक आपदा मानते हुए राहत कार्यों पर जोर दिया, परन्तु बाद में हैजा को सामाजिक बीमारी के रूप में देखा जाने लगा और इसके रोकथाम के उपाय अपनाने पर बल दिया गया। 1817-1821 की महामारी ने शासकों और जनता के बीच बड़े राजनीतिक संघर्ष उत्पन्न नहीं किए। जहाँ कहीं हिंसक प्रतिक्रियाएँ हुई, वे मुख्यतः स्थानीय समुदायों के भीतर तक सीमित रहीं, न कि औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध।
5. उपरोक्त, पृष्ठ 24-25. इस समय तक केवल हैजा से भारी मृत्यु नहीं हुयी, अपितु चेचक की सबसे गंभीर महामारिया 1889 और 1893 में प्रकट हुयीं। 1889 में लगभग 17,500 और 1893 में लगभग 10,000 मौतें दर्ज की गई। आमतौर पर चेचक की महामारियां तीन से पांच वर्ष के अंतराल पर फैलती थीं और लगभग दो वर्षों तक बनी रहती थी। प्लेग ने 1898 में मध्य प्रांतों में पहली बार अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और इसके बाद हर वर्ष इस बीमारी से कुछ मौतें होती रहीं। लेकिन 1903 में पहली गंभीर महामारी देखने को मिली, जिसमें लगभग 35,000 मौतें दर्ज की गई। प्रांत के कई बड़े शहरों में प्लेग का गंभीर प्रकोप हुआ। इसी तरह की एक और महामारी 1904 में भी फैली।
6. उपरोक्त, पृष्ठ 25. 1901 में समाप्त होने वाले बीस वर्षों के दौरान दर्ज की गई कुल मौतों में 60 प्रतिशत से अधिक मौतों का कारण बुखार बताया गया था। दोनों दशकों में बुखार से होने वाली मौतों की दर लगभग समान थी। हालांकि, 'बुखार' की श्रेणी में कई ऐसी बीमारियां भी शामिल थीं, जिनका सही-सही निदान करना कठिन था।
7. उपरोक्त, पृष्ठ 72.
8. एनुअल रिपोर्ट ऑफ द सेनेटरी कमिश्नर ऑफ़ द सेंट्रल प्रोविन्सेस एंड बरार फॉर द ईयर 1900, (नागपुर: 1901), पृष्ठ 09-11.
9. उपरोक्त, पृष्ठ 09-11.
10. उपरोक्त, पृष्ठ 09-11. इरा कलें, "इम्पेरिअलिस्म, इकोलॉजी एंड डिजीज इन इंडिया, 1850-1950, द इंडियन इकनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिन्यु, भाग 34, न०4, (1994), पृष्ठ 491-518.
11. उपरोक्त, पृष्ठ 09-11.
12. उपरोक्त, पृष्ठ 09-11.
13. एनुअल पब्लिक हेल्थ रिपोर्ट ऑफ द सेंट्रल प्रोविन्सेस एंड बरार फॉर द ईयर 1930, (नागपुर: 1931), पृष्ठ 3.
14. उपरोक्त, पृष्ठ 3.
15. उपरोक्त, पृष्ठ 3.
16. उपरोक्त, पृष्ठ 5.
17. उपरोक्त, पृष्ठ 6.
18. उपरोक्त, पृष्ठ 4.
19. उपरोक्त, पृष्ठ 4. जबकि अन्य जिलों में हैजा, चेचक और बुखार जैसी बीमारियों ने मृत्यु-दर बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
20. उपरोक्त, पृष्ठ 4. निमाड़ और यवतमाल को छोड़कर सभी ग्रामीण जिलों में जन्म-दर मृत्यु दर से अधिक रही। यवतमाल में मृत्यु दर अधिक होने का मुख्य कारण हैजा था, जबकि निमाड़ में हैजा, चेचक और बुखार जैसी बीमारियां इसके लिए जिम्मेदार थीं। इसी तरह, लगभग सभी शहरों में भी जन्म-दर मृत्यु-टर से अधिक रही। केवल दिग्रस, दरवाह और उमरखेड में मृत्यु दर जन्म-दर से अधिक थी। इन क्षेत्रों में मृत्यु दर बढ़ने का मुख्य कारण हैजा और बुखार थे। वहीं मुरवाड़ा में हैजा, बुखार और सास से जुड़ी बीमारियों ने मृत्यु दर को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
21. उपरोक्त, पृष्ठ 12-15.

22. उपरोक्त, पृष्ठ 13; नेविन स्क्रिमशी, कार्ल टेलर एवं जॉन गॉर्डन, द इंटरैक्शन्स ऑफ न्यूट्रिशन एंड इन्फेक्शन, जेनेवा, 1968, पृ. 134. ए. जे. एच. रसेल, स्टैटिस्टिकल स्टडीज इन द एपिडेमियोलॉजी ऑफ कॉलेरा ट्रांजैक्शन्स ऑफ द सेवेंथ कांग्रेस ऑफ द फार ईस्टर्न
23. एसोसिएशन ऑफ ट्रॉपिकल मेडिसिन, कलकत्ता, 1927, खंड 11, पृष्ठ 131.
24. "एनुअल पब्लिक हेल्थ रिपोर्ट ऑफ द सेंट्रल प्रोविन्सेस एंड बरार, पृष्ठ 13.
25. उपरोक्त, पृष्ठ 14.
26. "इरा कलें, "इम्पेरिअलिस्म, इकोलॉजी एंड डिजीज इन इंडिया, 1850-1950, पृष्ठ 498.
27. उपरोक्त, पृष्ठ 14. सी. ए. गिल एवं आर. बी. लाल, 'एपिडेमियोलॉजी ऑफ कॉलेरा, इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च, खंड XVIII, 1931, पृष्ठ 1255; पोलिट्जर, कॉलेरा, पृ. 82; रसेल, स्टेटिस्टिकल स्टडीज, पृ. 131.
28. उपरोक्त, पृष्ठ 14. शाखा चिकित्सालयों और कुष्ठ रोग से जुड़े कार्यों में नियुक्त चिकित्सा अधिकारियों ने भी आसपास के गांवों का दौरा करके इलाज और टीकाकरण का काम किया।
29. उपरोक्त, पृष्ठ 15.
30. उपरोक्त, पृष्ठ 15.
31. उपरोक्त, पृष्ठ 15.

जौनपुर की प्राचीनता : विविध मत

डॉ. प्रवीण कुमार त्रिपाठी*

सारांश

वर्तमान जौनपुर जनपद वाराणसी मण्डल का एक जनपद है। इस जनपद का नाम इसके जिला मुख्यालय के शहर जौनपुर के नाम पर किया गया है। जौनपुर शहर जो गोमती नदी के बाएं तट पर अवस्थित है, अपने नामकरण एवं स्थापना को लेकर सदैव विवादों में रहा है। विद्वानों के बीच इसकी प्राचीन पहचान एवं मध्यकाल में इसके रुपान्तरण एवं नामान्तरण को लेकर अनेक विचार प्रचलित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र इन्हीं विविध विचारों को संकलित कर प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

कीवर्ड – जौनपुर, जमैथा, जमदग्निपुर, फिरोजशाह, केरालवीर, यमनेन्द्रपुर

जौनपुर शहर की स्थापना के संबंध में प्रचलित मत के अनुसार जौनपुर शहर की स्थापना 1359 में फिरोजशाह तुगलक ने अपने भाई फखरूद्दीन जूना (मुहम्मद बिन तुगलक) की याद में जूनागढ़ के रूप में की थी जो आगे चलकर जूनापुर और फिर जौनपुर हो गया।[1] यह मत मूलतः मध्यकालीन अरबी–फारसी स्रोतों पर आधारित है। उदाहरण के लिए मध्यकालीन इतिहासकार सैयद गुलाम हुसैन तबातबाई की रचना सियार–उल–मुत्खैरीन के अनुसार – ''फिरोजशाह ने फिरोजाबाद इत्यादि 300 शहरों, 40 मस्जिदों, 30 मदरसों, 20 खानकाहों, 22 सरायों, 100 नहरों, 100 भवनों, 150 हमामों, 5 अस्पतालों, 100 वकवरों, 10 ऊँची मीनारों का निर्माण कराया एवं बहुत से बाग लगवाए। इन सबके साथ उसे जौनपुर शहर भी आबाद किया और अपने चचेरे भाई जूनाखां के नाम पर इसका नाम जूनाबाद या जौनपुर रखा।[2]

प्रचलित मत के अनुसार ''1358 ई (760 हिजरी) में बंगाल में हाजी इलियास की मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र सुल्तान सिकन्दर शाह ने विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का समर्थन कर सुल्तान फिरोजशाह को राजस्व एवं उपहार आदि प्रदान नहीं किए। अतः फिरोजशाह ने बंगाल पर आक्रमण कर दिया।[3] इसी आक्रमण के दौरान 1359–60 ई. (761 हिजरी) में बंगाल के सिकन्दर शाह के विरूद्ध द्वितीय अभियान के समय जब फिरोजशाह बरसात के कारण जफराबाद नामक स्थान पर रुका हुआ था।[4] तो वह नदी पार करते हुए उसके प्राकृतिक सौन्दर्य से इतना प्रभावित हुआ कि उसने वहाँ पर एक सुन्दर शहर का निर्माण करने का निश्चय किया जिसका नाम जौनपुर रखा जाएगा। यह शहर बंगाल में उसके सामरिक प्रयोजन हेतु शिविर का काम देगा। उसने वहां छह महीने तक निवास किया[5] और गोमती नदी के किनारे एक सुन्दर शहर का निर्माण कराया जिसका नाम अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलक के प्रारंभिक नाम जूनान या जूना के नाम से जूनापुर या जौनपुर रखा।[6]

इसी प्रकार जिला गजेटियर जौनपुर में उल्लखित है कि ''एक रात स्वप्न में मुहम्मद तुगलक ने फिरोजशाह को इस शहर का नामकरण उसके नाम पर करने की याचना की''[7] प्रातः काल मौजा करार (कुराज गांव) में गरियों या गोमती के ऊँचे किनारे पर उसने एक विशाल हिन्दू मंदिर के भग्नावशेष देखे जिसे देऊली कुराह बीर या करार कोट कहा जाता था। उसने उसे ध्वंस करने का आदेश दिया और इसके किनारे पर एक पत्थर का किला निर्माण करने का निर्देश दिया जिसके समीप जौनपुर शहर को आबाद किया जाय।[8]

जैसा कि जिला गजेटियर के विवरण से भी संकेत मिलता है कि वर्तमान जौनपुर शहर फिरोजशाह तुगलक के शासन काल से पूर्व भी अस्तित्व में था यद्यपि उसका स्वरूप एवं नाम भिन्न था। वस्तुतः प्राचीन कालीन स्रोतों का समग्र अध्ययन करने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि फिरोजशाह के यहां आने से पूर्व यह क्षेत्र आबाद था।

''अति प्राचीन काल में आज जहां जौनपुर स्थित है, वहां एक नगरी स्थित थी। लेकिन उसका क्या नाम था, यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते। पौराणिक कथानक, अनेक शिलालेख, मुद्राएं, लिखित और अलिखित साक्ष्यों, प्राचीन ध्वंसावशेषों तथा अन्य उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इसका अस्तित्व उत्तर वैदिक काल से मिलने लगता है।[9]

* सहायक आचार्य, इतिहास, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर

कुछ इतिहासकारों के अनुसार जौनपुर का महाभारत में 'यमदग्निपुर' नाम से उल्लेख मिलता है। यमदग्नि ऋषि अपने साथ अग्नि लेकर चलते थे। इसी से इनका नाम यमदग्नि पड़ा। ऋषि यमदग्नि अयोध्या के राजा दशरथ के समकालीन थे। ऐसा कहा जाता है कि सप्त सैन्धव क्षेत्र पंजाब के राजा सहस्त्रार्जुन से मतभेद हो जाने पर महर्षि यमदग्नि दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। जब वे गोमती नदी के तट पर आए तो वे सरिता के किनारे एकान्त शान्त झुरमुटों से लदी प्रकृति वधू के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गए। पहले यहां अनेक वन श्रृंखलाएं थी जो गंगा तट से आरंभ होकर चारों ओर फैली हुई थी। यहां आधुनिक जफराबाद और जौनपुर के मध्य गोमती के दाहिने किनारे पर व उन्होने आश्रम बनाया। इस स्थान पर आज भी एक प्राचीन मंदिर विद्यमान है। इसे यमदग्नि का मंदिर कहते हैं। यह मंदिर आधुनिक **जमैथा** ग्राम में देखा जा सकता है। अपने पुत्र परशुराम के साथ यमदग्नि ऋषि यही रहने लगे। यह क्षेत्र उस समय **अयोध्यापुरम** नाम से जाना जाता था। राजा सहस्त्रार्जुन ने वैमनस्यता के कारण महर्षि यमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण करने उनको नाना प्रकार के वस्त्र किया और बाद में मार डाला।[10] इन्हीं ऋषि यमदग्नि के नाम पर क्षेत्र का नाम **यमदग्निपुर** पड़ा। यमदग्निपुर कहने में कठिन था, अतः इसको **जवनपुर** कहा जाने लगा। ग्रामीण अनपढ़ अथवा कम पढ़े–लिखे लोग आज भी इन जवनपुर या **जमनपुर** कहते हैं।

इसी प्रकार वर्तमान जौनपुर के रामायण काल से अस्तित्व में होने के पर्याप्त संकेत मिलते हैं। जन श्रुति और परंपरा के अनुसार वर्तमान जौनपुर के गोमती नदी के किनारे एक हिंसक दुरात्मा निवास करता था जिसका नाम **केरालवीर** था। केरालवीर दशरथ से भी पहले था। केरालवीर को जौनपुर क्षेत्र का प्रथम राजा मान सकते हैं। उसके पास अत्यधिक शक्ति थी। वह शिव एवं काली दोनो से शक्ति अर्जित कर, जो चाहता वही करता था। उसके पास न तो सैन्य शक्ति थी न कोष। उसके दुष्कृत्यों से जनजीवन भयाक्रांत हो गया था। मार्गों पर लोग निर्भय होकर चल फिर नहीं सकते थे। अयोध्या के रामचन्द्र जी को जब उसके पैशाचिक कार्यों का पता चला तो वे अयोध्या से यहां आए। उन्होंने उस दुष्ट को मार डाला। केरालवीर के अनुयायियों ने उसके पड़े हुए धड़ के स्थान पर स्मृति के रूप में एक मंदिर का निर्माण कराया।[11] जौनपुर के आज भी यह मंदिर विद्यमान है लेकिन उस रूप में नहीं। ऐसा कहा जाता है कि फिरोजशाह ने उस मंदिर को तोड़वा कर उसके सामान किले के रूप में परिवर्तित कर दिया।[12] गोमती के बाएं किनारे दक्षिण–पश्चिम टीले के ढलान पर, जहां किला है, वहीं पर केरालवीर की समाधि है। केरालवीर की समाधि पर मानव धड़ की अस्पष्ट आकृति अब भी परिलक्षित होती है। ऐसी धारणा व्यक्त की जाती है कि यही कन्नौज के राजा विजयचंद ने एक मंदिर बनवाया था, जिसे फिरोजशाह तुगलक ने नया किला बनवाने के लिए नष्ट कर दिया था।[13]

एक विचार के अनुसार प्राचीन जौनपुर का एक नाम **'यमनेन्द्रपुर**' भी था। यवनेन्द्रपुर शब्द की ध्वनि यवनों से भी सम्बंध रखती है। बुन्देलखण्ड के प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर वहां के पूर्व जिलाधिकारी मि. ओमैनी ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि शिलालेख में उल्लिखित जौनपुर शहर का हरिवंश पुराण में वर्णित यवनेन्द्रपुर से निकट साक्ष्य है।[14]

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अलेक्जेण्डर कनिंघम ने जौनपुर की लाल दरवाजा मस्जिद के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख को पढ़ा और बताया कि इस्लामी शासन के पूर्व गोमती नदी के किनारे यह एक प्राचीन हिन्दू नगरी थी जिसे **'यमोनयामपुर**' या **अयोत्ययमपुर** कहा जाता था एवं यह विश्वास किया जाता था कि यही जौनपुर का प्राचीन नाम है।[15] अपनी रिर्पोट में कनिंघम ने यह भी बताया है कि कोई भी हिंदू इसे अब भी जौनपुर नहीं कहते बल्कि इसके लिए '**जमालपुर'** शब्द का प्रयोग करते हैं जो इस बात की ओर संकेत करता है कि इसका प्राचीन नाम यवनपुर रहा होगा जिसे **कालजमन** (जिसे साधारणतया 'काल यवन' कहा जाता था) शब्द से लिया गया है।[16] इस स्तम्भ पर **यकोमथायमपुर** या **यमोन्यायमपुर** या **अयोयामापुर** अंकित है जो जवनपुर का अपभ्रंश प्रतीत होता हो कनिंघम ने इसे ही जौनपुर का प्राचीन नाम माना है।[17]

ब्रिग्स के अनुसार तो फरिश्ता ने सन् 1266 (हिजरी 665) के वर्णन में बलवन के शासन काल में जौनपुर शहर का उल्लेख किया है। वह लिखता है "Gheias udd deen Bulbun sent an army into the Deob.......the intercourse between dehly and Bengal, by the route to Joonpoor and Benares".[18]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि फिरोजशाह तुगलक से पूर्व जौनपुर अपने वर्तमान अथवा भिन्न–भिन्न नामों के साथ अस्तित्व में रहा।

सन्दर्भ सूची –

1. आर. सी. मजूमदार, एडवांस हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, मैकमिलन एण्ड कं., पृ. 321
2. सियासल मुत्खैरीन, गुलाब हुसैन तवातबाई, जिल्द–1, पृ. 224, लखनऊ
3. स्टीवर्ट चार्ल्स, द हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ. 87, दिल्ली, 1971
4. अफीफ, तारीख ए फिरोजशाही अनु. इलियट जिल्द 3, पृ. 148
5. अफीफ तारीख ए फिरोजशाही अनु. इलियट जिल्द 3, पृ. 219
6. अफीफ, तारीख ए फिरोजशाही अनु. इलियट जिल्द 3, पृ. 148
7. जिला गजेटियर, जौनपुर, पृ. 145–146
8. जौनपुरनामा, फो. 2 ब यौगसन, पृ. 5–6
9. डॉ. शरतेन्दु दूबे, जौनपुर का गौरवशाली इतिहास, पृ. 27
10. डॉ. शरतेन्दु दूबे, जौनपुर का गौरवशाली इतिहास, पृ. 27
11. फुहरर, मान्यूमेण्टल एण्टीक्विटीज इन द नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेस एण्ड अवध, पृ. 179–180, वाराणसी, 1966
12. जे.पी. हैवेट, स्टेटिस्टिकल डिक्कैप्टिक एण्ड हिस्टारिकल एकाउन्ट ऑफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज ऑफ इण्डिया, वाल्यूम 14. भाग–3 जौनपुर पृ. 127
13. जे. वर्गेस, द शर्की आर्कीटेक्चर ऑफ जौनपुर, वाराणसी, 1971, पृ. 146
14. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जौनपुर, पृ. 145
15. ए. कनिंघम आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट जिल्द II, पृ. 103
16. व्हीलर रिपोर्ट, मई 1886
17. साहित्य धर्मिता, जौनपुर विशेषांक, पृ. 23
18. जान ब्रिग्स,History of the Rise of the Mahomedan Power in India जिल्द – 1 पृ–142

वैश्वीकरण के संदर्भ में जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति का बदलता स्वरूप

डॉ. अवधेश कुमार*

सारांश

जौनसार–बावर उत्तराखंड राज्य का एक महत्वपूर्ण जनजातीय एवं सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसकी पारंपरिक लोक संस्कृति अत्यंत समृद्ध और विशिष्ट रही है। यहाँ की सामाजिक संरचना, धार्मिक मान्यताएँ, विवाह प्रथाएँ, लोक नृत्य, पर्व-त्योहार तथा जीवन शैली स्थानीय परिस्थितियों और परंपराओं पर आधारित रही हैं। किंतु आधुनिक समय में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने इस क्षेत्र के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। शिक्षा, संचार तकनीक, बाजार व्यवस्था, पर्यटन तथा शहरी संपर्क के विस्तार ने यहाँ की पारंपरिक लोक संस्कृति के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हुए यह विश्लेषण किया गया है कि वैश्वीकरण ने इस क्षेत्र के सामाजिक जीवन, धार्मिक मान्यताओं, लोक कला, वेशभूषा, खान-पान तथा पारिवारिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर जीवन स्तर, शिक्षा और आर्थिक अवसरों में वृद्धि की है, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों और लोक प्रथाओं के संरक्षण के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। अतः आवश्यक है कि विकास और आधुनिकता के साथ-साथ सांस्कृतिक संरक्षण के प्रयास भी किए जाएँ, ताकि जौनसार–बावर की समृद्ध लोक संस्कृति आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सके।
मुख्य शब्द:जौनसार–बावर, वैश्वीकरण, लोक संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन, जनजातीय समाज

प्रस्तावना

भारत विविध संस्कृतियों, भाषाओं, परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं का देश है। यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में विकसित लोक संस्कृतियाँ न केवल स्थानीय समाज की पहचान को दर्शाती हैं, बल्कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत का भी महत्वपूर्ण भाग हैं। उत्तराखंड राज्य का जौनसार–बावर क्षेत्र अपनी विशिष्ट जनजातीय संस्कृति, सामाजिक संगठन और परंपराओं के लिए विशेष रूप से जाना जाता है।

जौनसार–बावर की लोक संस्कृति में सामुदायिक जीवन शैली, पारंपरिक विवाह प्रथाएँ, देव परंपरा, लोक पर्व-त्योहार, लोक नृत्य, संगीत, वेशभूषा और खान-पान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह संस्कृति स्थानीय पर्यावरण, भौगोलिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर विकसित हुई है।

किन्तु आधुनिक युग में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विश्व के विभिन्न समाजों को एक-दूसरे के निकट ला दिया है। संचार तकनीक, शिक्षा, मीडिया, बाजार और पर्यटन के विस्तार ने दूरस्थ क्षेत्रों को भी वैश्विक प्रभावों से जोड़ दिया है। जौनसार–बावर क्षेत्र भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा है।

वैश्वीकरण के प्रभाव से इस क्षेत्र की पारंपरिक सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपराएँ और जीवन शैली में परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आधुनिक शिक्षा, शहरी संपर्क और आर्थिक अवसरों के कारण नई पीढ़ी के दृष्टिकोण और जीवन मूल्यों में बदलाव आया है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य वैश्वीकरण के संदर्भ में जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति के बदलते स्वरूप का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

जौनसार–बावर क्षेत्र उत्तराखंड राज्य के देहरादून और आंशिक रूप से उत्तरकाशी जनपद में स्थित एक जनजातीय क्षेत्र है। यह क्षेत्र यमुना नदी की ऊपरी घाटी में स्थित पर्वतीय इलाका है। यहाँ की भौगोलिक संरचना दुर्गम पहाड़ियों, घने वनों और गहरी घाटियों से युक्त है।

इस क्षेत्र की जनसंख्या मुख्यतः जनजातीय समुदायों से बनी है। यहाँ के लोग परंपरागत रूप से कृषि, पशुपालन और वनोपज पर आधारित जीवन यापन करते रहे हैं। मंडुवा, झंगोरा, जौ, गेहूँ तथा अन्य पर्वतीय फसलें यहाँ की प्रमुख कृषि उपज हैं।

जौनसार–बावर की सामाजिक व्यवस्था में सामुदायिक सहयोग और पारस्परिक संबंधों का विशेष महत्व रहा है। महाशू देवता की पूजा यहाँ की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख आधार है। देव परंपरा, सामूहिक अनुष्ठान और लोक विश्वास इस क्षेत्र के सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

---

* सहायक प्राध्यापक (संविदा) – इतिहास, पं. शिवराम राजकीय महाविद्यालय, त्यूणी, देहरादून

वैश्वीकरण की अवधारणा

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विश्व के विभिन्न समाजों, संस्कृतियों और अर्थव्यवस्थाओं के बीच संपर्क और परस्पर निर्भरता बढ़ती है। इसके अंतर्गत सूचना, तकनीक, वस्तुओं, सेवाओं और विचारों का तीव्र आदान-प्रदान होता है।

भारत में 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने तीव्र गति प्राप्त की। इसके परिणामस्वरूप संचार क्रांति, सूचना प्रौद्योगिकी का विकास, परिवहन सुविधाओं का विस्तार और बाजार व्यवस्था का प्रसार हुआ।

इन परिवर्तनों का प्रभाव ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों तक भी पहुँचा। जौनसार–बावर क्षेत्र में सड़क, मोबाइल फोन, इंटरनेट, टेलीविजन और शिक्षा संस्थानों के विस्तार ने इस क्षेत्र को बाहरी दुनिया से जोड़ दिया है। इससे यहाँ की पारंपरिक जीवन शैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं।

जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति

(1) सामाजिक संरचना

जौनसार–बावर में पारंपरिक रूप से संयुक्त परिवार प्रणाली और सामुदायिक जीवन शैली प्रचलित रही है। गाँव एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करता था, जहाँ सामूहिक निर्णय और सहयोग की परंपरा थी।

(2) विवाह प्रथाएँ

यहाँ बहुभाई विवाह (Polyandry) जैसी विशिष्ट प्रथा का उल्लेख मिलता है। विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं, बल्कि दो परिवारों और समुदाय के बीच सामाजिक अनुबंध माना जाता था।

(3) धार्मिक परंपराएँ

महासू देवता की पूजा और देव डंगरियों की परंपरा इस क्षेत्र की धार्मिक व्यवस्था का प्रमुख अंग रही है। धार्मिक अनुष्ठानों में पूरे समुदाय की भागीदारी होती थी।

(4) लोक नृत्य और संगीत

हारूल, रासो और झुमैला जैसे लोक नृत्य तथा ढोल-दमाऊ जैसे वाद्य यंत्र यहाँ की सांस्कृतिक पहचान हैं।

(5) पर्व-त्योहार

बिसु, माघ मेला, हरेला, फूलदेई जैसे पर्व सामूहिक उत्सव के रूप में मनाए जाते रहे हैं।

वैश्वीकरण का प्रभाव

(1)सामाजिक संरचना में परिवर्तन

शिक्षा और रोजगार के अवसरों के कारण युवा वर्ग का शहरों की ओर पलायन बढ़ा है। इससे संयुक्त परिवार प्रणाली कमजोर हुई है और एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है।

(2)विवाह प्रथाओं में परिवर्तन

बहुभाई विवाह जैसी पारंपरिक प्रथाएँ लगभग समाप्त हो चुकी हैं। अब आधुनिक विवाह प्रणाली और व्यक्तिगत पसंद का महत्व बढ़ गया है।

(3)धार्मिक विश्वासों में बदलाव

शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के कारण अंधविश्वासों में कमी आई है। हालांकि देव परंपरा आज भी सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण अंग बनी हुई है।

(4)लोक कला पर प्रभाव

आधुनिक मीडिया और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण युवा पीढ़ी में पारंपरिक लोक नृत्य और संगीत के प्रति रुचि कम हो रही है।

(5)वेशभूषा और खान-पान में परिवर्तन

पारंपरिक वस्त्रों और स्थानीय भोजन की जगह आधुनिक जीवन शैली का प्रभाव बढ़ गया है।

वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण ने जौनसार–बावर क्षेत्र की पारंपरिक लोक संस्कृति और सामाजिक जीवन पर कई सकारात्मक प्रभाव डाले हैं। सबसे पहले, वैश्वीकरण के कारण शिक्षा, संचार और परिवहन के साधनों का विस्तार हुआ है, जिससे इस क्षेत्र के लोगों को नई जानकारी

और अवसर प्राप्त हुए हैं। आधुनिक शिक्षा के प्रसार से युवाओं में जागरूकता बढ़ी है और वे अपने अधिकारों तथा सामाजिक विकास के प्रति अधिक सजग हुए हैं।

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण ने स्थानीय संस्कृति, लोक नृत्य, लोक गीत और परंपराओं को व्यापक स्तर पर पहचान दिलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पर्यटन और मीडिया के माध्यम से जौनसार–बावर की सांस्कृतिक विशेषताओं को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली है। इससे स्थानीय लोगों की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ है।

साथ ही, आधुनिक तकनीक और संचार माध्यमों के विकास से लोगों का जीवन स्तर बेहतर हुआ है और सामाजिक प्रगति को नई दिशा मिली है। इस प्रकार वैश्वीकरण ने पारंपरिक समाज को आधुनिक विकास के साथ जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण का जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति पर कुछ नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है। आधुनिकता और बाहरी संस्कृतियों के प्रभाव के कारण यहाँ की कई पारंपरिक प्रथाएँ, रीति-रिवाज और लोक परंपराएँ धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही हैं। विशेष रूप से युवा पीढ़ी आधुनिक जीवनशैली की ओर अधिक आकर्षित हो रही है, जिसके कारण पारंपरिक वेशभूषा, लोकगीत, लोकनृत्य और स्थानीय भाषाओं का प्रयोग कम होता जा रहा है।

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण के प्रभाव से उपभोक्तावाद और भौतिकवादी प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है, जिससे पारंपरिक सामाजिक मूल्यों और सामुदायिक भावना पर भी असर पड़ा है। पहले जहाँ समाज में आपसी सहयोग, सामूहिकता और पारंपरिक सामाजिक नियमों का अधिक महत्व था, वहीं अब व्यक्तिगत स्वार्थ और आधुनिक जीवनशैली का प्रभाव बढ़ने लगा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने जहाँ विकास के नए अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इसके कारण पारंपरिक संस्कृति और सामाजिक पहचान के सामने चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता

जौनसार–बावर क्षेत्र की पारंपरिक लोक संस्कृति, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोकनृत्य, वेशभूषा और सामाजिक परंपराएँ इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान हैं। वैश्वीकरण और आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव के कारण इन पारंपरिक मूल्यों और सांस्कृतिक विरासत पर धीरे-धीरे संकट उत्पन्न हो रहा है। इसलिए इनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। सांस्कृतिक संरक्षण से न केवल हमारी ऐतिहासिक और सामाजिक पहचान सुरक्षित रहती है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी अपनी जड़ों और परंपराओं से जुड़ने का अवसर मिलता है। इसके लिए समाज, सरकार और शैक्षणिक संस्थानों को मिलकर प्रयास करने चाहिए, ताकि जौनसार–बावर की समृद्ध लोक संस्कृति को भविष्य में भी सुरक्षित रखा जा सके।

निष्कर्ष - जौनसार–बावर की पारंपरिक लोक संस्कृति समय के साथ निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रही है। वैश्वीकरण ने इस क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। जहाँ एक ओर आधुनिक शिक्षा, संचार और आर्थिक विकास ने जीवन स्तर को बेहतर बनाया है, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक लोक संस्कृति के सामने नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

अतः यह आवश्यक है कि विकास और आधुनिकता के साथ-साथ सांस्कृतिक संरक्षण के प्रयास भी किए जाएँ, ताकि जौनसार–बावर की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सके।

संदर्भ सूची

1. बिष्ट, नरेंद्र सिंह (2010). उत्तराखंड की लोक संस्कृति एवं परंपराएँ. देहरादून: साहित्य लोक प्रकाशन।
2. जोशी, के. सी. (2005). जौनसार–बावर: समाज और संस्कृति. देहरादून: उत्तराखंड साहित्य संस्थान।
3. पंत, हरिकृष्ण (2012). हिमालयी जनजातीय समाज: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. अल्मोड़ा: हिमालय प्रकाशन।
4. रावत, बी. एस. (2015). उत्तराखंड की जनजातियाँ: परंपरा और परिवर्तन. नैनीताल: कुमाऊँ विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. शर्मा, आर. के. (2014). वैश्वीकरण और भारतीय समाज. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।
6. सिंह, योगेन्द्र (2001). भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।
7. दुबे, एस. सी. (1998). भारतीय समाज. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. गिडेन्स, एंथनी (1990). The Consequences of Modernity. Cambridge: Polity Press.
9. Appadurai, Arjun (1996). Modernity at Large: Cultural Dimensions of Globalization. Minneapolis: University of Minnesota Press.
10. Robertson, Roland (1992). Globalization: Social Theory and Global Culture. London: Sage Publications.
11. Dube, S. C. (2000). Indian Society. New Delhi: National Book Trust.

◂◂ ▸▸

मौर्ययुगीन युगीन मूर्तिकला का स्वरूप एवं आयाम

डॉ. राहुल*

सारांश

भारतीय इतिहास में मौर्यकाल न केवल अपने राजनीतिक केन्द्रीकरण के लिए जाना जाता है, वरन संस्कृति के विभिन्न तत्वों को उनके द्वारा एक आधार प्रदान करने का कार्य किया गया। अपनी सुस्थिरता तथा राजनीतिक शक्ति के आधार पर उनके द्वारा कलाओं के विभिन्न माध्यमों को न केवल प्रोत्साहित किया गया, वरन् उनमें विभिन्न तत्वों को समावेशित करने का प्रयास किया गया। जिसके कारण कला तत्व भारतीय जीवन पद्धति को प्रतिबिम्बित करने का कार्य करने लगी। मौर्यकालीन नवीन नवाचार ने मूर्तिकला को एक विशिष्टता प्रदान करने का कार्य किया। राजकीय कला एवं लोककला के जो प्रमाण हमारे समक्ष उपस्थित होते है, उनसे स्पष्ट होता है कि मौर्यकाल में मूर्तिकला एक विशिष्ट कारक के रूप में फलीभूत हुआ था।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में मौर्यकाल अपनी विशिष्ट कला के माध्यम से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मौर्यकालीन कला ने न केवल भारतीय परम्परा को अक्षुण बनाऐ रखा, वरन् कला को एक नवीन आयाम प्रदान करने का कार्य किया। वास्तविकता यह है कि मौर्यकाल में कला को राजकीय संरक्षण भी प्रदान किया गया। इस काल मे कला का जो स्वरूप एवं विषयवस्तु प्राप्त होते है, वह बहुमुखी एवं समृद्ध है। मौर्यकाल में कला के दो विशिष्ट स्वरूप प्राप्त होते है। प्रथम वह कला जो राजकीय संरक्षण में पल्लवित एवं विकसित हुई तथा द्वितीय लोककला, जिसमें जनसाधारण ने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए कला को अपना माध्यम बनाया। राजकीय कला के अन्तर्गत नगर निर्माण, राजप्रसाद, स्तूप, गुहा एवं पाषाण स्तम्भों का निर्माण तथा तक्षण कला को सम्मलित किया जाता है। लोक कला में मनके, मिट्टी की मूर्तियाँ तथा उत्तरी काली चमकीले मृदभांड को सम्मलित किया जाता है।

वाराणसी के समीप सारनाथ नामक स्थान से मौर्यकाल के अनेक अवशेष प्राप्त होते है, जिनका सम्बन्ध बौद्ध धर्म से है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रस्तर स्तम्भ है। सारनाथ से अशोककालीन एक पाषाण वेष्टनी प्राप्त होती है, जो कि बौद्ध विहार के प्रधान चैत्य के दक्षिण गृह में ईटों के एक छोटे स्तूप के चारों ओर लगाई गई थी। यह प्रस्तर वेष्टनी एक ही प्रस्तर खण्ड से बनाई गई है, जिसमें कही भी जोड नही है। पाषाण वेष्टनी बहुत ही सुन्दर, चिकनी तथा चमकदार है। इसके निर्माण का व्यय सवाहिका नामक किसी व्यक्ति के द्वारा किया गया था, जिसका नाम पाषाण वेष्टनी पर अंकित है।[1] सारनाथ में बहुत सी ऐसी प्रस्तर मूर्तियाँ प्राप्त होती है, जो कि खण्डित अवस्था में है। इन पर चमकदार ओप होने के कारण इनकों मौर्यकाल से सम्बन्धित माना जाता है।

मौर्यकाल में तक्षशिला एक महत्वपूर्ण स्थल था जो कि उत्तरापथ की राजधानी के रूप में प्रख्यात था। इस स्थल की खुदाई से मौर्यकाल से सम्बन्धित अनेक पुरावशेष प्राप्त होते है। इस स्थान से प्राप्त आभूषणों के आधार पर मौर्यकालीन आभूषण कला के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। सुवर्ण द्वारा निर्मित ये आभूषण प्रशस्त रत्नों द्वारा जड़ित है। यह आभूषण भिड़ नामक स्थान से प्राप्त हुए है।[2]

प्रयाग के दक्षिण पश्चिम में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भरहुत नामक स्थान से मौर्यकालीन अनेक साक्ष्य प्राप्त होते है। भरहुत से एक विशाल स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए है। इसका निर्माण ईटों से किया गया है, जिसका व्यास 68 फीट था। स्तूप के चारो ओर एक पाषाण वेष्टनी प्राप्त होती है, जिस पर बौद्ध गाथाओं का चित्रण किया गया है।[3] यह पाषाण वेष्टनी 7 फीट से अधिक ऊँची थी। यह चार समकोण प्रकोष्ठों में विभाजित थी तथा इनके मध्य में सुन्दर तोरणों से युक्त द्वार बनाए गए थे। पाषाण वेष्टनी के चित्रों में जातक कथाओं को प्रदर्शित किया गया है। इस स्तूप में बड़ी संख्या में छोटे छोटे आले (ताखें) बने हुए है, जो कि निश्चित रूप से उत्सवों के दौरान दीप प्रज्ज्वलित करने के लिए बनाए गए थे। वर्तमान समय में यह भग्नावस्था में है तथा इसके पाषाण वेष्टनी का अधिकांश भाग कोलकाता संग्रहालय में सुरक्षित है।

* प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सारनाथ, सांची एवं भरहुत के समान ही मौर्य काल के अनेक स्थानों पर इसी प्रकार की पाषाण वेष्टनी प्राप्त होती है। बोधगया से प्राप्त एक पाषाण वेष्टनी के अवशेष को अशोक के काल का माना जाता है। वेसनगर से एक पाषाण वेष्टनी प्राप्त होती है, जो कि विभिन्न चित्रों से विभूषित है। पाटिलपुत्र की खुदाई से तीन पाषाण वेष्टनी के अवशेष प्राप्त होते है। यह सभी पाषाण वेष्टनियाँ कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है तथा सभी एक ही प्रस्तर खण्ड से निर्मित है।[4]

मौर्यकाल में विशेष रूप से अशोक के द्वारा बड़ी संख्या में स्तम्भ लेख प्राप्त होते है। कला की दृष्टि से यह स्तम्भ महत्वपूर्ण माने जाते है। अभी तक मौर्यकाल से सम्बन्धित कुल 17 स्तम्भ प्राप्त हो चुके है, जिनमें से 13 को अशोक कालीन माना जाता है। इन सभी स्तम्भों का निर्माण चुनार के बलुआँ पत्थर से किया गया है। सभी स्तम्भों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। स्तम्भ का सम्पूर्ण लाट एक पत्थर से निर्मित है, जबकि इसका शीर्ष भाग को एक अन्य पत्थर से निर्मित किया गया है। सम्पूर्ण स्तम्भ पर ओप किए जाने का प्रमाण प्राप्त होता है, जिसके कारण यह चमकदार एवं चिकना है।[5] मौर्यकाल की यह कला सम्प्रति के काल तक चलती रही तथा उसके पश्चात इस प्रकार का कोई निर्माण प्राप्त नही होता है।

अशोक कालीन स्तम्भों के लाट गोल तथा नीचे से ऊपर तक चढ़ाव उतारदार है। इनकी ऊँचाई तीस से चालीस फीट तक तथा इनका वनज 1000 से 1200 मन तक है। लौरिया नन्दनगढ़ के स्तम्भ का व्यास नीचे 35 इंच तथा ऊपर 22 इंच के लगभग है। लाटों का शीर्ष भाग पृथक रूप से बनाकर बाद में उनके साथ संयुक्त किया गया है। यह मौर्यकालीन मूर्तिकला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माने जाते है। मौर्यकालीन स्तम्भ के शीर्ष भाग के पाँच अंश है। प्रथम लाट के ठीक ऊपर इकहरी अथवा दोहरी पतली मेखला। द्वितीय मेखला के ऊपर लोटी हुई कमल पंखुड़ियों की आलंकारिक आकृति वाले घंटें की आकृति। तृतीय उस पर एक कंठा जो कि मोटी डोरी अथवा सादे गोले के ढंग से निर्मित है। चर्तुथ इसके ऊपर गोल अथवा चौखण्ड़ी चौकी। पंचम इस चौखण्ड़ी चौकी पर एक अथवा एक से अधिक पशुओं की प्रतिकृति। विभिन्न स्तम्भों में यह पशु आकृति भिन्न भिन्न प्रकार के है, जिनमें सिंह, वृषभ, हाथी, अश्व तथा हंस प्रमुख है। अशोक के विभिन्न स्तम्भों मे सारनाथ का स्तम्भ सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसकी चौकी पर चार पहिए चित्रित है। उनके मध्य में हाथी, वृषभ, अश्व एवं सिंह के चित्र खोदे गए है। इन चक्रों एवं प्राणियों को चलित अवस्था में दिखाया गया है। चौकी के शीर्ष पर चार सिंह पीठ से पीठ मिलाए, चारो दिशाओं की ओर मुख किए हुए बैठे है।[6] इनकी आकृतियाँ भव्य, दर्शनीय एवं गौरवपूर्ण है, जिनमें कल्पना, यर्थाथ तथा सौन्दर्य का अद्भुत मिश्रण मिलता है। सिंह मूर्तियों का प्रत्येक अंग अत्यन्त सजीव एवं कलात्मक है। उनके बाल तक अत्यन्त बरीकी से बनाए गए है। पूर्व में इन सिंह मूर्तियों की आँचो मणियुक्त थी, परन्तु वर्तमान में इनमें मणियाँ प्राप्त नही होती है।

मौर्यकाल में जिस प्रकार से विशाल, सुन्दर, चिकनें एवं चमकदार स्तम्भों का निर्माण किया गया है, उस प्रकार के अवशेष भारत अथवा भारत के बाहर किसी भी अन्य स्थान पर प्राप्त नही होते है। भारत आने वाले विदेशी यात्री इसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाते है, उनको भ्रम होता है कि यह धातु निर्मित है। पत्थर को काट कर तथा घिस कर जिस प्रकार के सुन्दर स्तम्भों तथा मूर्तियों का निर्माण किया गया। उस प्रकार की उत्कृष्ट कला का उदाहरण मौयों के अतिरिक्त और कही प्राप्त नही होता है।

मौर्य युग में गुहा भवन का निर्माण प्रस्तर को काट कर अत्यंत सुन्दर एवं आकर्षक रूप में किया गया। गया जिले के बराबर की पहाड़ियों में अशोक द्वारा आजीवक संप्रदाय के लिए तीन गुहा भवनों का निर्माण करवाया। इसी प्रकार के गुहा भवनों का निर्माण अशोक के पौत्र दशरथ के द्वारा बराबर एवं नागार्जुनी पहाड़ियों पर करवाया गया। बराबर पहाड़ी पर स्थित चार में से तीन गुफाओं पर अशोक के छोटे लेख अंकित है, जबकि चौथी गुफा पर मौखरि शासक अनन्तवर्मन का लेख उत्कीर्ण है। नागार्जुनी पहाड़ी पर तीन शैल कृत गुफाओं में दशरथ के अभिलेख उत्कीर्ण है। इनमें से बराबर की पहाड़ी पर स्थित सुदामा गुफा को सबसे प्राचीन माना जाता है। इस गुफा समूह में चार गुफायें बराबर की पहाड़ियों पर प्राप्त होती है। कर्णचौपड़, सुदामा, लोमश ऋषि तथा विश्वझोपड़ी,नागार्जुनी पहाड़ी पर गोपिका, वहीजक तथा बडल्हीक गुफाएँ स्थित है।[7]

लोमश ऋषि की गुफा के द्वार पर मेहराब में हाथियों की एक सुन्दर पंक्ति पत्थर काट कर बनाई गई है। गुहाभवनों की भित्तियों पर चमकदार ओप की गई है, जो कांच के समान चमकती है। इन गुफाओ को अत्यन्त कठोर शिलाओं को धैर्य तथा परिश्रम से काट कर निवास के लिए भवन बनाने की जिस कला का चरम विकास अजन्ता एवं ऐलोरा की गृफाओं में दिखाई देता है, उसका सूत्रपात मौर्य युग में ही प्रारम्भ हुआ। पाटिलपुत्र एवं अन्य नगरों की खुदाई से मौर्य काल की अनेक मूर्तियॉ प्राप्त होती है, जो कि बलुऍ पत्थर से

निर्मित है। इन पर चमकदार ओप किया गया है।[8] ओप की कला मौर्य युग की विशेषता मानी जाती है। इन पर सबसे प्रसिद्ध चामरग्राहिणी यक्षी की मूर्ति प्राप्त होती है, जो 6 फीट 9 इन्च ऊँची है। यह दीदारगंज पटना से प्राप्त हुई है। यक्षी का मुखमण्डल अत्यन्त सुन्दर है। अंग प्रत्यंग में समुचित भराव है तथा उसकी मुद्रा दर्शनीय है। इसका प्रयोग मौग्र राजप्रासाद मे सज्जा के लिए किया गया था। इसी प्रकार पाटिलपुत्र के भग्नावशेषों में जैन तीर्थकरों की अनेक खडी मूर्तियॉ प्राप्त हुई है, जिनमें ओप का प्रयोग किया गया है। इनमें से एक मूर्ति कायोत्सर्ग मुद्रा में है। दुर्भाग्यवश ये मूर्तियॉ खण्ड़ित अवस्था में है तथा इनके केवल धड़ भाग ही उपलब्ध है। कुमराहार की खुदाई में एक मूर्ति का सिर प्राप्त हुआ, जिस पर पगड़ी बनी हुई है तथा कानों में कर्णभूषण लटकाए हुए बनाए गए है। इसी प्रकार की अन्य मूर्तियों में हार, मेखला इत्यादि आभूषण खंचित है।[9] सारनाथ से दो पुरूष मूर्तियों के मस्तक, एक सिर के कतिपय खण्ड तथा एक पक्षी मूर्ति का खण्ड़ित रूप प्राप्त होता है। इन सभी पर चमकदार ओप होने के कारण इनकों मौर्य युग से सम्बन्धित माना जाता है। पत्थरों को काट कर मूर्ति बनाने की कला मौर्य काल में अपने परिपक्व अवस्था में दिखाई देती है। इस युग में पत्थर को तराशनें की कला अपनी पूर्णता को प्राप्त कर चुकी थी।

मौर्य काल में बड़ी संख्या में मृण्मूर्तियां प्राप्त होती है। यह मूर्तियॉ पटना, अहिच्छत्र, मथुरा, कौशाम्बी, गाजीपुर इत्यादि क्षेत्रों में बड़ी संख्या मे प्राप्त होती है यह सभी मूर्तिया कला के दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित वेशभूषा तथा सभ्यता के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करती है। बुलन्दीबाग पटना से एक मृणमूर्ति प्राप्त हुई है, जिसकी ऊँचाई लगभग 10 इंच है। यह एक नर्तकी की मूर्ति मानी जाती है, जो कि नृत्य मुद्रा में खड़ी है। इसका दायॉ हाथा ऊपर की ओर उठा हुआ है। इसके सिर पर पगड़ी के ढंग का एक परिधान है, जो कि दोनो तरफ से ऊँचा उठा हुआ है। शरीर के निचले भाग पर एक लहंगा है, जो कि थोड़ा सा ऊपर की ओर उठा हुआ है। इसकी कमर पतली तथा उसके वक्षस्थल पर कपड़े की एक पट्टी बनाई गई है।[10] इसी प्रकार की अन्य मृणमूर्तियॉ अन्य स्थानों पर भी प्राप्त होती है। इसके माध्यम से मौर्यकालीन परिधान, वेशभूषा, तथा आभूषणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

बुलन्दीबाग पटना से मौर्य युग से सम्बन्धित एक रथ का पहिया प्राप्त होता है, जिसमें 24 आरियाँ है। इस पहिए का व्यास चार फीट का है। इस पर लोहे के बैण्ड का प्रयोग किया गया है। इससे तत्कालीन रथों के आकार तथा स्वरूप के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। यही से एक मूर्ति का शीर्ष भाग प्राप्त होता है, जिसका निर्माण हाथी दांत से किया गया है। यह आकार में बहुत छोटा है। इसकी ऊँचाई एक इंच तथा चौड़ाई तीन इंच है।[11] यह इस बात का प्रमाण है कि मौर्यकाल में हाथी दाँत का उपयोग कला कृतियों के निर्माण के लिए किया जाता था।

पाटिलपुत्र के अतिरिक्त मौर्य काल से सम्बन्धित बहुत सी प्रस्तर मूर्तियाँ अन्य स्थानों से प्राप्त होती है। आगरा एवं मथुरा के मध्य परखम नामक स्थान से एक मूर्ति प्राप्त होती है, जिसकी ऊँचाई सात फीट है। इसका निर्माण बलुए पत्थर से किया गया है। इसके ऊपर भी चमकदार ओप किया गया है। दुर्भाग्य से इस मूर्ति का सिर एवं भुजाएँ भग्नावस्था में है। मूर्ति में जिस प्रकार का पहनावा प्राप्त होता है, उससे मौर्यकालीन वेशभूषा के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। वर्तमान समय में यह मूर्ति मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार की एक मूर्ति वेसनगर से प्राप्त होती है, जो कि किसी स्त्री की है। इसकी भुजाएँ तथा मुख भग्न अवस्था में है। इसकी ऊँचाई 6 फीट 7 इंच है।[12] इस पर मौर्यकालीन ओप किया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि मौर्यकाल में मूर्तिकला को एक नवीन आयाम प्राप्त होता है। इस काल में न केवल मूर्ति निर्माण कला में वरन् उसके विषयगत क्षेत्र में भी अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते है। मूर्तियों को चमकदार बनाने की कला इस काल में अपने विकसित स्वरुप में प्राप्त होती है। इस काल में निर्मित स्तूपों तथा स्तूपों में पाए जाने वाले प्रकोष्ठों से प्राप्त मूर्तियॉ इस काल की मूर्तिकला की भव्यता को प्रदर्शित करती है। इसके साथ ही यह कला लोककला को भी प्रतिबिम्बित करने का कार्य करती है। इसके माध्यम से हमें तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त होती है। मौर्ययुगीन कला को एक मानक के रूप में देखा जाता है, जिसने भविष्य के मूर्तिनिर्माण कला को एक आधार प्रदान करने का कार्य किया।

सन्दर्भ ग्रंथ

1 मिश्र, रमानाथ, भारतीय कला की विरासत, मैकमिलन्स प्रकाशन नई दिल्ली, 1977
2 उपाध्याय,डॉ0 उदय नारायण, तिवारी, गौतम, भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसीदास, 2001

3 रौलैड, बी0, आर्ट एण्ड आकिटेक्चर ऑफ इंडिया, पेन्गुइन, 1967
4 वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहासए हिन्दी समिति, लखनऊ, 1972
5 जिमर, एच0, द आर्ट ऑफ इंडिया, न्यूयार्क, 1955,
6 दूबे, श्यामचरण ;(स0) भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, मध्यप्रदेश हिन्दी गंरथ अकादमी भोपाल, 1987
7 बाशम, ए0 एल0 ;स0 ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंड़िया ऑक्सफोर्ड 1975
8 कुमारस्वामी, ए0 के0 हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इंडोनीसियन आर्ट 1965
9 अग्रवालए वी0 एस0, इंडियन आर्ट, पृथ्वी, वाराणसी, 1965
10 विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2017
11 ब्राउन, पर्सी, इंड़ियन आर्किटेक्चर बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू पीरियड्स, मुम्बई, 1965
12 पाण्डेय, जयनारायण, भारतीय कला, प्राच्य विद्या संस्थान, प्रयागराज, 2000 पृ0 सं0 106

भारतीय संविधान में शिक्षा सम्बन्धी विशेष प्रावधान

धर्मेन्द्र कुमार मिश्र*

15 अगस्त सन् 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त 26 जनवरी सन् 1950 को भारतीय संविधान लागू किया गया। भारत के संविधान को विश्व का सर्वाधिक विस्तृत संविधान माना जाता है। इस संविधान में भारतीय जनमानस की आकांक्षाओं के अनुरूप शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, जिसके अन्तर्गत भाग तीन एवं भाग चार में शिक्षा सम्बन्धी अनेक प्रावधान किये गये है। प्राथमिक शिक्षा का मूल अधिकार, अल्पसंख्यकों की शिक्षा, शिक्षा के अधिकारों में समानता, अनुसूचित जाति व जनजाति के बालकों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता, शिक्षा का माध्यम, हिन्दी भाषा के विकास इत्यादि के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान किये गये है।

- **समवर्ती सूची में शिक्षा** – दिसम्बर 1976 तक शिक्षा राज्य सूची का विषय था परन्तु भारतीय संविधान के 42वें संसोधन जो कि 11 नवम्बर, 1976 को संसद द्वारा पारित कर दिया गया और 18 दिसम्बर 1976 को महामहिम राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के उपरांत शिक्षा समवर्ती सूची में सम्मिलित हो गयी। शिक्षा का दायित्व केन्द्र तथा राज्य दोनों को संयुक्त रूप से सौंप दिया गया। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि केन्द्र द्वारा बनाये गये कानूनों और राज्यों द्वारा बनाये गये कानूनों में विरोध होने की दशा में केन्द्र द्वारा बनाये गये कानून को माना जाता है।

(1) निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा – भारतीय संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 45 के राज्य के नीति निदेशक तत्व के अन्तर्गत लिखा है कि राज्य संविधान के लागू होने से 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष की आयु पूरी कर लेने वाले सभी बच्चों के लिये अनिवार्यतथा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा। यह राज्य का कर्तव्य होगा कि वह इन सिद्धान्तों का प्रयोग कानून बनाते समय करेगा।

(2) प्राथमिक शिक्षा : मौलिक अधिकार – प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु भारतीय संविधान में 86वाँ संविधान संसोधन अधिनियम, 2002 के अनुसार अग्रलिखित संसोधन किये गये।

- **शिक्षा का अधिकार, 21क** – राज्य, 6 से 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सुरक्षा में शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21क के रूप में जोड़कर मूल अधिकार बना दिया गया जो कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था में ऐतिहासिक कदम साबित हुआ।
- **अनुच्छेद 45** – 6 वर्ष से कम आयु के बालकों के लिये प्रारम्भिक बाल्यावस्था देख–रेख और शिक्षा का उपबन्ध–राज्य सभी बालकों के लिये 6 वर्ष की आयु पूरी करने तक प्रारम्भिक बाल्यावस्था देख–रेख और शिक्षा दोनों के लिये उपबन्ध करने का प्रयास करेगी।
- **अनुच्छेद 51क** – माता–पिता या संरक्षक, 6 से 14 वर्ष तक की आयु वाले अपने बालक या प्रतिपाल्य के लिये यथास्थित शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

(3) शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश के समान अधिकार – संविधान के अनुच्छेद 29(2) में यह व्यवस्था की गयी है– राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी भी शैक्षिक संस्था में किसी भी व्यक्ति को धर्म, मूल, वंश अथवा जाति के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जायेगा। वर्तमान में यह नियम वित्तविहीन मान्यता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों के साथ पब्लिक विद्यालयों पर भी लागू है।

(4) स्त्री शिक्षा हेतु विशेष व्यवस्था – स्त्री शिक्षा के सन्दर्भ में संविधान के अनुच्छेद 15(3) में यह व्यवस्था की गयी है– इस अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्य को स्त्रियों और बालकों हेतु काननू बनाने में कोई बाधा नहीं होगी।

(5) समाज के कमजोर वर्गों हेतु शिक्षा की विशेष व्यवस्था – संविधान में सर्वप्रथम अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता (छूआछूत) को समाप्त किया गया है और अनुच्छेद 46 में यह व्यवस्था की गयी है– राज्य, समाज के कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति के साथ सामाजिक भेदभाव और सभी प्रकार के शोषण से संरक्षण करेगा।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, बी0 एड0 विभाग, लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुगलसराय, चन्दौली।

वर्तमान में कमजोर वर्गों के सभी बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा के साथ निःशुल्क पुस्तकें, छात्रवृत्तियों तथा आरक्षण की सुविधा है।

(6) अल्पसंख्यकों की शिक्षा हेतु विशेष व्यवस्था – अल्पसंख्यकों की शिक्षा के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 30 में दो प्रावधान किये गये हैं–

(a) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा। अनुच्छेद 30(1)

(b) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी संस्थान के विरूद्ध इस आधार पर भेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है। अनुच्छेद 30(2)

(7) विकलागों की शिक्षा हेतु विशेष प्रावधान – विकलांग बच्चे भी समाज के कमजोर वर्गों के अन्तर्गत आते हैं। अतः संविधान के अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत इन बच्चों का शैक्षिक एवं आर्थिक विकास संघीय सरकार का दायित्व है।

(8) प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा – संविधान के अनुच्छेद 350(A) में यह घोषणा की गयी है कि प्रत्येक राज्य और प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी का यह दायित्व है कि वह भाषायी दृष्टि से अल्पसंख्यकों के बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की समुचित सुविधाएँ उपलब्ध करायेगा।

(9) हिन्दी भाषा का विकास – संविधान में राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास तथा प्रचार की व्यवस्था की गयी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार राष्ट्रीय भाषा हिन्दी के प्रसार, संवर्धन तथा इसे ऐसे ढंग से विकसित करने का विशेष दायित्व केन्द्र का है कि यह भारत की मिली–जुली संस्कृति के सभी वर्गों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

(10) धार्मिक शिक्षा हेतु विशेष प्रावधान – भारतीय संविधान में सर्वधर्म सम्मत शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। संविधान के अनुच्छेद 28 (1, 2, 3) में प्रावधान है कि राज्य सरकार द्वारा संचालित शैक्षिक संस्थाओं में, धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है। परन्तु यदि सरकार द्वारा प्रशासित या सहायता प्राप्त किसी शैक्षिक संस्था की स्थापना किसी ऐसे न्यास के अधीन हुयी है जिसमें कुछ धार्मिक क्रियायें आवश्यक है तो उस संस्था में उन धार्मिक क्रियायों की शिक्षा दी जा सकती है। उक्त धारा में यह प्रावधान भी है कि सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त या सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षिक संस्था में चलायी जा रही धार्मिक पूजा में भाग लेने के लिये किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जा सकता है।

(11) केन्द्रीय सूची में सम्मिलित शैक्षिक विषय –

प्रविष्टि–13 – अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं, संघों तथा अन्य संस्थाओं में सहभागिता एवं वहाँ लिये गये निर्णयों का क्रियान्वयन।

प्रविष्टि–62 – इस संविधान के लागू होने पर जैसे राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय आदि संस्थाओं तथा संसद द्वारा अथवा उसके द्वारा बनायी विधि के अन्तर्गत घोषित राष्ट्रीय महत्व की ऐसी ही संस्थायें।

प्रविष्टि–63 – इस संविधान के लागू होने पर बनारस हिन्दू वि0वि0, अलीगढ़ मुस्लिम वि0वि0, दिल्ली वि0वि0, अनुच्छेद 371 के अनुशरण में स्थापित विश्वविद्यालय तथा संसद द्वारा घोषित अथवा उसके द्वारा बनायी विधि के अन्तर्गत राष्ट्रीय महत्व की उच्च शैक्षिक संस्थायें।

प्रविष्टि–64 – संसद द्वारा अथवा उसके द्वारा बनायी विधि के अन्तर्गत घोषित राष्ट्रीय महत्व के वैज्ञानिक तथा तकनीकि संस्थान।

प्रविष्टि–65 – व्यावसायिक व तकनीकि प्रशिक्षण संस्थान तथा विशिष्ट अध्ययन व अनुसंधान को प्रोत्साहन।

प्रविष्टि–66 – उच्च शिक्षा या अनुसंधान के संस्थानों तथा वैज्ञानिक व तकनीकि संस्थाओं के मानकों का निर्धारण व समन्वय।

प्रविष्टि–67 – संसद द्वारा अथवा उसके द्वारा बनायी विधि के अन्तर्गत राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्मारक तथा अभिलेख एवं पुरात्व स्थल व अवशेष।

(12) राज्यसूची में सम्मिलित शैक्षिक विषय –

प्रविष्टि–12 – राष्ट्रीय महत्व के घोषित न किये गये तथा राज्य द्वारा नियन्त्रित या वित्तीय सहायता प्राप्त पुस्तकालय, संग्रहालय तथा ऐतिहासिक स्मारक आदि।

(13) समवर्ती सूची में सम्मिलित शैक्षिक विषय –

प्रविष्टि–20 – आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन।

प्रविष्टि–25 – केन्द्र सूची की प्रविष्टि 63, 64, 65 तथ 66 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये शिक्षा, जिसके अन्तर्गत तकनीकि शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा व विश्वविद्यालय है, श्रमिकों का व्यावसायिक तथा तकनीकि प्रशिक्षण।

भारतीय संविधान में शिक्षा के सम्बन्ध में किये गये प्रावधानों के अवलोकन से स्पष्ट है कि संविधान के निर्माताओं ने सूझ–बूझ का परिचय देते हुये शिक्षा को जनसाधारण के कल्याण का साधन स्वीकार किया है तथा सभी नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्ति के अधिकतम सम्भव अवसर प्रदान करने की भावना से शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों को स्पष्ट रूप से इंगित किया है। इसी प्रावधानों के फलस्वरूप 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 74.04% है जबकि स्वतन्त्रता के समय 1947 में भारत की साक्षरता दर महज 18% थी। भारत ने शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों के कारण ही शैक्षिक दृष्टिकोण से वैश्विक स्तर पर एक विशेष स्थान हासिल कर सका है।

सन्दर्भ सूची :–

1. कबीर, हूमायूँ, (1977), स्वतन्त्र भारत में शिक्षा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0 पी0 एवं गुप्ता, अलका (2021), भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
3. लाल, रमन बिहारी (2018), भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें, आर0 लाल0 प्रकाशन, मेरठ।
4. लक्ष्मीकान्त, एम. (2023), भारत की राजव्यवस्था, मैकग्रा–हिल प्रकाशन, बैंगलोर।
5. वालिया, जे0 एस0, (2009), भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, अहमपाल प्रकाशन, मेरठ।
6. सिंह, कर्ण (2004), भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी।

◀◀ ▶▶

संजीव के 'फाँस' उपन्यास में स्त्री चेतना का संघर्ष

डॉ. शिव शरन द्विवेदी*

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन, किसान-समाज, आर्थिक विषमता, जातिगत संरचना और सामाजिक शोषण को जिस गंभीरता से अभिव्यक्ति मिली है, उसमें संजीव का कथा-साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। संजीव ने अपने उपन्यासों और कहानियों में समाज के उन वर्गों और समुदायों को केंद्र में रखा है, जो व्यवस्था के हाशिए पर जीवन जीने के लिए विवश हैं। उनका उपन्यास 'फाँस' किसान जीवन की त्रासदी, कर्ज, बाजारवादी व्यवस्था, सामंती मानसिकता, सामाजिक असमानता और मानवीय संकट का प्रभावशाली आख्यान है। किंतु 'फाँस' को केवल किसान-जीवन की आर्थिक त्रासदी का उपन्यास मानना उसके व्यापक सामाजिक सरोकारों को सीमित कर देना होगा। इस उपन्यास में ग्रामीण स्त्री का जीवन, उसकी विवशताएँ, संघर्ष, संवेदना और चेतना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रूप में सामने आती है।

भारतीय ग्रामीण समाज में स्त्री का जीवन अनेक स्तरों पर संघर्षशील रहा है। वह परिवार की आर्थिक और सामाजिक संरचना को संभालने के साथ-साथ पुरुष-प्रधान व्यवस्था की असमानताओं को भी झेलती है। किसान परिवार आर्थिक संकट में फँसता है तो उसका सबसे गहरा प्रभाव स्त्री पर पड़ता है। कर्ज, गरीबी, बेरोजगारी, कृषि-संकट, पारिवारिक तनाव और सामाजिक दबाव उसके जीवन को प्रभावित करते हैं। इस संदर्भ में 'फाँस' की स्त्री केवल पीड़ित पात्र नहीं है, बल्कि वह अपने अनुभवों से सामाजिक यथार्थ को पहचानती और उसके विरुद्ध अपनी चेतना विकसित करती दिखाई देती है।

उपन्यास में स्त्री चेतना का स्वर कहीं प्रत्यक्ष है तो कहीं पारिवारिक संबंधों, संवादों, व्यवहार और निर्णयों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त होता है। स्त्री का संघर्ष केवल पुरुष के विरुद्ध नहीं, बल्कि उन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के विरुद्ध भी है जो उसे दोहरे-तिहरे शोषण का शिकार बनाती हैं। इसलिए 'फाँस' में स्त्री चेतना को किसान संकट और ग्रामीण सामाजिक संरचना के व्यापक संदर्भ में समझना आवश्यक है।

बीज शब्द : स्त्री चेतना, ग्रामीण स्त्री, किसान जीवन, आर्थिक संकट, कर्ज, पितृसत्ता, सामाजिक यथार्थ, शोषण, संघर्ष, आत्मसम्मान।

'फाँस' का मूल कथ्य भारतीय किसान के उस जीवन-संकट से जुड़ा है जिसमें कृषि केवल आजीविका का साधन न रहकर कर्ज, बाजार और असुरक्षा के जाल में फँस जाती है। किसान प्राकृतिक आपदाओं, आर्थिक दबाव, साहूकारी व्यवस्था, कृषि-व्यवस्था की विसंगतियों और बाजार की अनिश्चितताओं के बीच संघर्ष करता है। इस संकट का प्रभाव केवल किसान पुरुष तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पूरा परिवार उसकी चपेट में आता है। ग्रामीण परिवार में स्त्री आर्थिक संकट की प्रत्यक्ष सहभागी होती है। वह घर चलाने, भोजन की व्यवस्था करने, बच्चों की देखभाल करने और पारिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के त्याग करती है। जब परिवार आर्थिक संकट में पड़ता है, तब उसकी जिम्मेदारियाँ और बढ़ जाती हैं। 'फाँस' में इसी पारिवारिक और सामाजिक संकट के भीतर स्त्री जीवन की वास्तविकता उभरती है। शशि भूषण सिंघल अपना मंतव्य प्रस्तुत

* ग्रा.+पो. – झींगुर, कुंडा, जिला – प्रतापगढ़, (उत्तर प्रदेश)
मो. नं. – 7084609049, ईमेल - shivsharandwivedi1990@gmail.com

करते हुए लिखते हैं कि " नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है, किसी भी समाज की श्रेष्ठता का निर्णय मुख्यतः समाज में नारी की स्थिति पर निर्भर रहता है। नारी समाज में उन्नति, अवनति का द्योतक बन जाती है।"(1)

स्त्री चेतना का अर्थ केवल स्त्री के अधिकारों की मांग नहीं है। यह अपने अस्तित्व, अस्मिता, स्वतंत्रता, सम्मान और निर्णय की क्षमता के प्रति जागरूक होने की प्रक्रिया है। जिस क्षण स्त्री अपने ऊपर होने वाले अन्याय को केवल नियति मानकर स्वीकार करने के बजाय उसके कारणों को पहचानने लगती है, उसी क्षण उसके भीतर चेतना का विकास होता है। 'फाँस' की स्त्रियाँ इसी अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि वे अपने आसपास की परिस्थितियों को समझती हैं। वे परिवार की आर्थिक समस्याओं को केवल पुरुष की समस्या नहीं मानतीं, बल्कि स्वयं उससे प्रभावित होती हैं। उनकी संवेदना परिवार की चिंता से जुड़ी होने के साथ-साथ अपने अस्तित्व और सम्मान की चिंता से भी जुड़ती है।

" यौन शोषण तो नारी जीवन का अभिशाप है जिसे वह सदियों से ढोती रही है। ऊपर से अगर वह नारी हो तो क्या कहें? उसके लिए यह दोहरा अभिशाप है। वह शोषण ही शोषण को बर्दाश्त करती आई है, औरत होने के कारण मर्द से और दलित होने के दर्द से।"(2)

'फाँस' में किसान परिवार का आर्थिक संकट स्त्री के जीवन को गहराई से प्रभावित करता है। कर्ज केवल आर्थिक देनदारी नहीं है; वह परिवार के मानसिक वातावरण को भी प्रभावित करता है। जब आय सीमित हो और आवश्यकताएँ अधिक हों, तब सबसे पहले घरेलू जीवन में तनाव पैदा होता है। स्त्री को घर की आवश्यकताओं और उपलब्ध संसाधनों के बीच संतुलन स्थापित करना पड़ता है। ग्रामीण स्त्री आर्थिक संकट की स्थिति में अपने व्यक्तिगत सुखों और इच्छाओं का त्याग करती है। बच्चों की पढ़ाई, भोजन, वस्त्र और घर की जरूरतों को प्राथमिकता देती है। इस प्रकार वह परिवार की आर्थिक व्यवस्था की अनदेखी की गई, लेकिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण, आधार-शिला बन जाती है। डॉ. कुलकर्णी ने अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि " नारी की गुलामी का एक मात्र कारण है, उसकी आर्थिक परतंत्रता।"(3)

संजीव के दृष्टि की यह विशेषता रही है कि वे स्त्री के इस अदृश्य श्रम को सामाजिक यथार्थ का हिस्सा बनाते हैं। स्त्री का श्रम केवल घरेलू काम तक सीमित नहीं रहता; वह कृषि और पारिवारिक उत्पादन में भी योगदान करती है। इसके बावजूद उसे सदैव आर्थिक निर्णयों में बराबर का अधिकार नहीं मिलता। यही विडंबना स्त्री चेतना को जन्म देती है।

संजीव का 'फांस' उपन्यास किसानों को समर्पित किया गया है। सबका पेट भरने और तन ढकने वाले देश के लाखों किसानों और उनके परिवारों के आत्महत्या को हम रोक नहीं पा रहे हैं। 'फांस' उपन्यास के लेखक संजीव द्वारा किसान आत्महत्या पर केंद्रित अनेक वर्षों के शोध का परिणाम है। इस उपन्यास की शुरुआत महाराष्ट्र विदर्भ राज्य के यवतमाल जिले के एक सुखाड़ गांव 'बनगांव' से होता है। इस उपन्यास में स्त्री पात्रों में शकुंतला, सरस्वती (बड़ी), कलावती (छोटी), शोभा, आशा प्रमुख रूप से उभर कर आती हैं। स्त्री के विभिन्न चरित्रों के माध्यम से लेखक ने नारी विमर्श का सही मायने में विस्तार और विकास किया है। इसका उदाहरण देते हुए संजीव कहते हैं कि "अरे sss महिलाएं क्या नहीं कर सकती।"(4)

ग्रामीण समाज की संरचना लंबे समय से पितृसत्तात्मक रही है। परिवार में पुरुष को निर्णय लेने वाला और स्त्री को निर्णय का पालन करने वाला माना जाता रहा है। 'फाँस' में इस व्यवस्था की विसंगतियाँ दिखाई देती हैं। पुरुष की आर्थिक असफलता का बोझ भी स्त्री को उठाना पड़ता है, लेकिन निर्णय लेने की स्वतंत्रता उसे समान रूप से नहीं मिलती। इस स्थिति में स्त्री का प्रश्न केवल आर्थिक नहीं रह जाता। वह सम्मान, स्वायत्तता और निर्णय-अधिकार का प्रश्न बन जाता है। स्त्री जब परिवार की परिस्थितियों पर अपनी राय व्यक्त करती है, समस्याओं पर प्रश्न उठाती है और अपने अनुभव के आधार पर निर्णय की आवश्यकता को रेखांकित करती है, तब वह पितृसत्तात्मक संरचना के भीतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है।

भारतीय ग्रामीण जीवन में स्त्री का श्रम बहुआयामी है। खेत, घर, पशुपालन, बच्चों की देखभाल और परिवार के अन्य कार्यों में उसका योगदान रहता है। इसके बावजूद उसके श्रम को अक्सर 'काम' के रूप में पर्याप्त सामाजिक मान्यता नहीं मिलती। 'फाँस' उपन्यास में स्त्री के इसी श्रम की अंतर्ध्वनि सुनाई देती है। किसान परिवार की आर्थिक स्थिति को समझने के लिए स्त्री के योगदान को समझना आवश्यक है। आर्थिक संकट के समय वह कम संसाधनों में परिवार को संभालती है। उसके श्रम में त्याग, धैर्य और संघर्ष का समन्वय दिखाई देता है। इस उपन्यास में सबसे ज्यादा प्रभावकारी एवं मार्मिक अंश यह है कि आत्महत्या करने वाली मां की बेटी कहती है कि "सोते जागते जब भी देखा, मां को काम करते देखा।"[5]

'फाँस' में स्त्री चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष मातृत्व से संबंधित है। ग्रामीण स्त्री के लिए परिवार और विशेषतः बच्चों का भविष्य उसके संघर्ष का प्रमुख आधार होता है। आर्थिक संकट के बावजूद वह बच्चों के जीवन को बेहतर बनाने की आकांक्षा रखती है। मातृत्व यहाँ केवल भावनात्मक संबंध नहीं है, बल्कि सामाजिक चिंता का रूप भी ग्रहण करता है। स्त्री यह समझती है कि यदि परिवार आर्थिक और सामाजिक संकट से बाहर नहीं निकला तो अगली पीढ़ी भी उसी संकट में फँस सकती है। इसलिए उसकी चिंता वर्तमान के साथ भविष्य से भी जुड़ी है।

स्त्री चेतना का सबसे महत्वपूर्ण आयाम आत्म सम्मान है। 'फाँस' की स्त्रियाँ अनेक प्रकार के अभावों और दबावों के बावजूद अपने सम्मान को महत्त्व देती हैं। वे परिवार की परिस्थितियों से समझौता करती हैं, लेकिन उनकी चेतना पूरी तरह समाप्त नहीं होती। यहाँ समझौता और समर्पण को एक ही अर्थ में नहीं देखा जाना चाहिए। ग्रामीण स्त्री कई बार परिस्थितियों के कारण समझौता करती है, किंतु उसके भीतर असहमति, प्रश्न और बेहतर जीवन की आकांक्षा जीवित रहती है। यही आंतरिक प्रतिरोध उसके व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण बनाता है।

'फाँस' की स्त्री चेतना को किसान संकट से अलग करके नहीं देखा जा सकता। किसान की आर्थिक समस्या जब पारिवारिक संकट बनती है, तब स्त्री उसका सबसे संवेदनशील पक्ष अनुभव करती है। किसान की जमीन, कर्ज और उत्पादन से जुड़े प्रश्न अंततः घर की रसोई, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और भविष्य से जुड़ जाते हैं। इस प्रकार उपन्यास में स्त्री प्रश्न और किसान प्रश्न परस्पर संबद्ध दिखाई देते हैं। आर्थिक शोषण और लैंगिक असमानता एक-दूसरे को मजबूत करते हैं। गरीब परिवार की स्त्री आर्थिक रूप से भी कमजोर होती है और सामाजिक रूप से भी। इसलिए उसका संघर्ष दोहरे स्तर पर चलता है।

संजीव के यहाँ प्रतिरोध हमेशा आक्रामक या घोषणात्मक रूप में नहीं आता। कई बार मौन, असहमति, प्रश्न, निर्णय में भागीदारी और आत्मसम्मान की रक्षा भी प्रतिरोध के रूप होते हैं। 'फाँस' की स्त्री का प्रतिरोध इसी व्यापक अर्थ में देखा जाना चाहिए। वह परिवार को टूटने से बचाने का प्रयास करती है, लेकिन अपने अनुभवों को नकारती नहीं। वह आर्थिक संकट की वास्तविकता को समझती है और सामाजिक रूढ़ियों के बीच अपनी स्थिति को पहचानती है। यही पहचान उसे केवल 'पीड़िता' से 'सजग व्यक्ति' में परिवर्तित करती है।

ग्रामीण समाज में स्त्री को अनेक रूढ़ियों का सामना करना पड़ता है। उसकी स्वतंत्रता पर नियंत्रण, सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता, पारिवारिक मर्यादा, विवाह और पारंपरिक भूमिकाएँ उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। आर्थिक रूप से कमजोर परिवार में ये रूढ़ियाँ और अधिक कठोर हो सकती हैं। 'फाँस' इन रूढ़ियों को किसी अलग विमर्श की तरह नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के भीतर प्रस्तुत करता है। इस कारण स्त्री का संघर्ष अधिक विश्वसनीय और जीवन के निकट दिखाई देता है।

स्त्री चेतना व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रहती। जब स्त्री अपने अधिकारों, सम्मान और निर्णय क्षमता के प्रति जागरूक होती है, तब उसका प्रभाव परिवार और समाज पर भी पड़ता है। 'फाँस' में स्त्री की जागरूकता व्यापक सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं की ओर संकेत करती है। यदि ग्रामीण समाज को

आर्थिक और सामाजिक संकट से मुक्त करना है, तो स्त्री की सहभागिता आवश्यक है। उसे केवल परिवार की जिम्मेदारी उठाने वाली इकाई न मानकर सामाजिक-आर्थिक निर्णयों की सहभागी बनाना होगा। संजीव का उपन्यास अप्रत्यक्ष रूप से इसी आवश्यकता को रेखांकित करता है। इस उपन्यास में सामाजिक परिवर्तन कलावती के जींस पहनकर पूरे गांव में मटकते हुए घूमना तथा अशोक नाम के लड़के से प्यार करना और उससे दुनिया जहांन की बातें करना। वह अपने पिता शिबू से बहस करती है कि " मुलगियों के सिर पर ही इज्जत का सारा बोझ क्यों?"[(6)]

'फाँस' का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि इसमें किसान संकट के भीतर स्त्री की स्थिति को समझने की संभावना विकसित होती है। हिंदी साहित्य में किसान जीवन पर अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं, किंतु किसान की समस्या को परिवार और स्त्री के अनुभव से जोड़ना उसे अधिक व्यापक बनाता है। संजीव की स्त्री चेतना किसी नारे या वैचारिक घोषणा पर आधारित नहीं है। वह जीवन की ठोस परिस्थितियों से निर्मित होती है। भूख, गरीबी, कर्ज, परिवार, श्रम, सामाजिक दबाव और भविष्य की चिंता उसके निर्माण के प्रमुख आधार हैं। इसीलिए 'फाँस' की स्त्री चेतना सामाजिक यथार्थ से गहरे जुड़ी हुई दिखाई देती है।

निष्कर्ष

संजीव का 'फाँस' भारतीय किसान जीवन के संकट का मार्मिक और यथार्थपरक आख्यान है। इस उपन्यास में कर्ज, आर्थिक असमानता, कृषि-संकट, बाजारवादी व्यवस्था और सामाजिक शोषण के साथ-साथ ग्रामीण स्त्री के जीवन-संघर्ष को भी महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। स्त्री यहाँ केवल परिवार की सहायक या पुरुष की पीड़ा की सहभागी नहीं है, बल्कि वह स्वयं एक स्वतंत्र सामाजिक अनुभव और चेतना का केंद्र है। 'फाँस' में स्त्री चेतना का विकास आर्थिक संकट, पारिवारिक तनाव, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, श्रम की उपेक्षा, आत्मसम्मान और भविष्य की चिंता के बीच होता है। स्त्री परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई अपनी पहचान और सम्मान को बनाए रखने का प्रयास करती है। उसका प्रतिरोध कभी मुखर तो कभी मौन है, किंतु दोनों स्थितियों में उसके भीतर सामाजिक यथार्थ को पहचानने की क्षमता दिखाई देती है। 'फाँस' में स्त्री चेतना को केवल नारी-मुक्ति के पारंपरिक अर्थ में देखना पर्याप्त नहीं होगा। यह चेतना किसान जीवन की समग्र त्रासदी से जुड़ी हुई है। स्त्री की मुक्ति आर्थिक न्याय, सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा से अभिन्न रूप से संबंधित है। संजीव का उपन्यास इस तथ्य को प्रभावी ढंग से सामने लाता है कि किसान संकट का वास्तविक चित्र तभी पूर्ण हो सकता है, जब उसमें उस स्त्री की आवाज भी सुनी जाए, जो घर, खेत और परिवार के बीच अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है।

अतः 'फाँस' में स्त्री चेतना सामाजिक यथार्थ की एक अनिवार्य संवेदनात्मक परत है। यह चेतना स्त्री को करुणा की पात्र से संघर्षशील व्यक्तित्व में रूपांतरित करती है और पाठक को ग्रामीण समाज की उन जटिल संरचनाओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है, जिनमें आर्थिक शोषण और लैंगिक असमानता एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। यही संजीव के उपन्यास की सामाजिक प्रासंगिकता और साहित्यिक सार्थकता है।

संदर्भ सूची :

1. हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियां - डॉ. शशि भूषण सिंहल, पृष्ठ संख्या - 99
2. अनभौ (पत्रिका) - संपादक रतन कुमार पाण्डेय, दिसम्बर - 2004, पृष्ठ संख्या - 19
3. हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी - डॉ. रेखा कुलकर्णी, पृष्ठ संख्या - 50
4. फांस - संजीव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 2015, पृष्ठ संख्या - 150
5. वही, पृष्ठ संख्या - 184
6. वही, पृष्ठ संख्या - 20

◀◀ ▶▶

मॉरीशस में गन्ना उद्योग और भारतीय गिरमिटिया मजदूर (1834–1920)

उपेन्द्र यादव*

सारांश

19वीं शताब्दी का मॉरीशस ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण चीनी उत्पादक उपनिवेश था। यह द्वीप ज्वालामुखी लावा से बना हुआ, उपजाऊ मिट्टी से युक्त था। इस देश की आर्थिक संरचना मुख्यतः गन्ना उद्योग पर आधारित थी जिसके विकास में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की महत्वपूर्ण भूमिका थी किन्तु 1834 के बाद दास प्रथा के उन्मूलन से उत्पन्न श्रम के संकट ने कृषि आधारित गन्ना उद्योग की अर्थव्यवस्था के समक्ष गंभीर चुनौती उत्पन्न कर दी। इसी ऐतिहासिक परिस्थिति में, औपनिवेशिक श्रम–व्यवस्था के समाधान के रूप में भारत से अनुबंध प्रणाली के तहत भारतीय श्रमिकों को मॉरीशस लाया गया। इसी प्रणाली को 'शर्तबंध प्रथा' या 'गिरमिटिया प्रणाली' कहा गया।

इन भारतीय श्रमिकों ने केवल गन्ने की खेती और चीनी उत्पादन को ही नहीं बढ़ाया बल्कि मॉरीशस के सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक विकास की भी आधारशिला रखी। कठोर श्रम, कम मजदूरी, अनुबंध की कठोरतम शर्तों, अमानवीय बर्ताव तथा किसी भी प्रकार के सरकारी संरक्षण की कठोरता का अभाव आदि सभी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भारतीय गिरमिटिया मजदूरों ने अपने श्रम, अनुशासन और सांस्कृतिक मूल्यों के बल पर मॉरीशस के इतिहास में अमिट स्थान स्थापित किया।

मुख्य शब्द – मॉरिशस, गन्ना उद्योग, भारतीय गिरमिटिया मजदूर, अनुबंधित श्रम, औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था, चीनी उद्योग।

प्रस्तावना

हिन्द महासागर में स्थित इस छोटे से द्वीपीय देश मॉरीशस में प्राकृतिक संसाधान सीमित थे किन्तु इसकी उपजाऊ ज्वालामुखीय मिट्टी और अनुकूल जलवायु ने इसे गन्ने की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त बना दिया। यहां गन्ने की व्यावसायिक खेती का प्रारंभ 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी शासन के दौरान प्रारम्भ हुआ जबकि 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत यह उद्योग मॉरीशस की अर्थव्यवस्था का आधार बन गया।

ब्रिटिश साम्राज्य के लिए मॉरीशस केवल एक सामरिक द्वीप ही नहीं था बल्कि चीनी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र भी था। यूरोपीय देशों में चीनी की बढ़ती मांग के कारण गन्ना उत्पादन का विस्तार आवश्यक हो गया। प्रारम्भ में इस उद्योग की नींव अफ्रीकी दासों पर आधारित थी किन्तु 1833 के अधिनियम द्वारा दास प्रथा की समाप्ति के पश्चात इन बागानों में श्रम संकट उत्पन्न हो गया।

इस श्रम संकट के समाधान करने और गन्ना उत्पादन के विस्तार के लिए ब्रिटिश सरकार ने दासता की एक अन्य प्रणाली की शुरुआत की जिसे 'गिरमिटिया प्रणाली (इन्डेंचर्ड सिस्टम)' कहा गया। इस प्रणाली के माध्यम से विभिन्न ब्रिटिश उपनिवेशों जैसे– मॉरीशस, फिजी, जमैका, सूरीनाम तथा ट्रिनिडाड और टोबैगो आदि जगहों पर भारतीय गिरमिटिया मजदूरों को गन्ने की खेती के लिए भेजा गया। इस प्रणाली के माध्यम से भारतीय श्रमिकों का पहला संगठित दल 2 नवम्बर 1834 को मॉरीशस पहुँचा। इन श्रमिकों में आधिकांश, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल और मद्रास प्रेसीडेंसी के ग्रामीण क्षेत्रों से थे। इन भारतीय मजदूरों ने मॉरीशस के गन्ना उद्योग के लिए खेत तैयार करने, गन्नें की रोपाई, सिंचाई, कटाई, डलाई और चीनी मिलों में अपने कठोर परिश्रम द्वारा चीनी के उत्पादन को निरंतर बढाया। उनके श्रम से मॉरीशस ब्रिटिश साम्राज्य के प्रमुख चीनी निर्यातक उपनिवेश के रूप में स्थापित हो गया।

गिरमिटिया मजदूर और चीनी उद्योग का अंतःसंबंध –

मॉरीशस के चीनी उद्योग और गिरमिटिया श्रमिकों के परस्पर अंतःसंबंधों को निम्न बार–ग्राम और तालिका द्वारा दर्शाया गया है–

* शोधार्थी, पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
Email: yadavupendra93@gmail.com

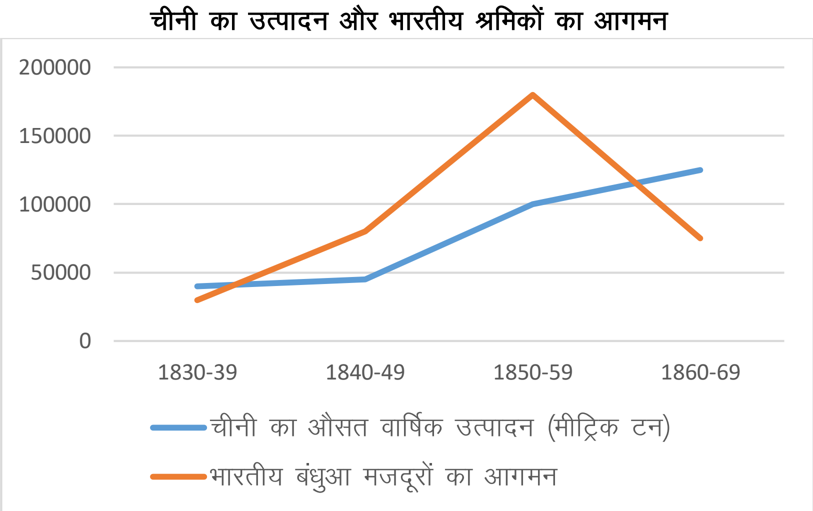

स्रोत – अमित कुमार मिश्रा की पुस्तक 'मॉरीशस' से पेज नं0 47

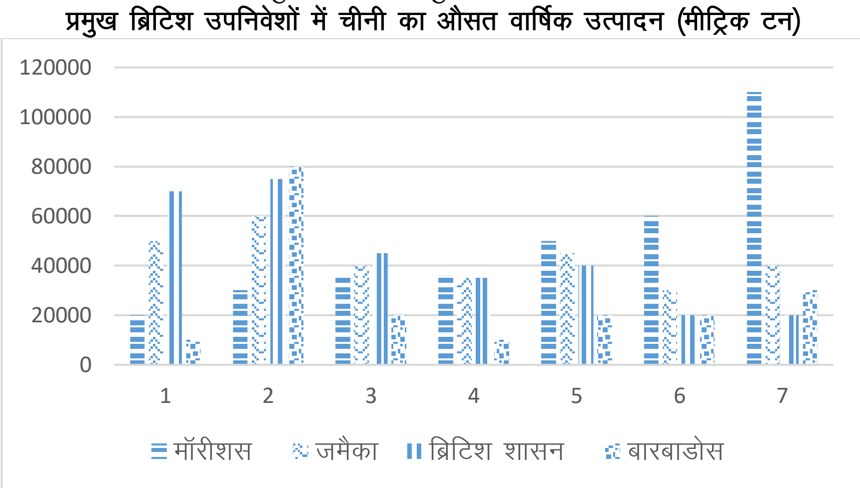

स्रोत – अमित कुमार मिश्रा की पुस्तक 'मॉरिशस' से, पेज नं.–47

उपरोक्त दोनों सांख्यिकीय आंकडों में स्पष्ट है कि भारतीप गिरमिटिया मजदूरों की वृद्धि का वहां की चीनी उद्योग के विकास में प्रत्यक्ष और उत्तरोत्तर वृद्धिगत परिणाम हुए।

मॉरीशस के चीनी उद्योग की सफलता के लिए किसी एक कारक को जिम्मेदार नहीं माना जा सकता बल्कि वास्तव में यह कई कारकों का सम्मिलित प्रयास था। प्रथम, सन् 1825 तक वेस्ट इण्डियन चीनी, को ब्रिटेन को निर्यात किए जाने पर इस चीनी को शुल्क में रियायत मिलती थी तो वहीं मॉरीशस की चीनी पर ज्यादा शुल्क लगाया जाता था। 1825 में ही कैरेबियाई चीनी को निर्यात के लिए दी जाने वाली विशेष रियायत खत्म हो गई और मॉरीशस को भी समान शुल्क पर ब्रिटेन से चीनी निर्यात की छूट मिली। इससे मॉरीशस के चीनी उद्योग को एक बहुप्रतिक्षित प्रोत्साहन मिला। चीनी का उत्पादन एक साल में दोगुना हो गया – 1825 में 10,869 टन में 1826 में 21,244 टन। द्वितीय, जब दासता को खत्म किया गया तब मॉरीशस के दास मालिकों को मुआवजे की रकम के रूप में 2 मीलियन पाउण्ड की राशि मिली। चीनी के उत्पादन और उसके व्यापार से होने वाले लाभ की संभावना को देखते हुए इन दास मालिकों ने मुआवजे की राशि को बहुत ही सावधानी से चीनी उद्योग के विस्तार और गन्ने की खेती में विस्तार पर केन्द्रीत किया। तृतीय, दासता प्रणाली के उन्मूलन से उत्पन्न श्रमिक समस्या का समाधान अत्यंत आवश्यक था। चूंकि भारत

एक बड़ी आबादी वाला देश था और इसकी बड़ी आबादी अत्यंत गरीबी में जीवन यापन कर रही थी ऐसी परिस्थिति में बड़ी मात्रा में भारतीयों को इधर से उधर किया जा सकता था। इस प्रणाली को गिरमिटिया प्रणाली या इन्डेंर्च्ड सिस्टम कहा गया। इसी प्रणाली के तहत भारतीयों का प्रथम दल 'एटलस' नामक जहाज के माध्यम से 2 नवम्बर 1834 को मॉरीशस पहुंचा। इस स्थान को वर्तमान में यूनेस्को हेरिटेज के रूप में 'आप्रवासी घाट' के नाम से जाना जाता है। चूंकि भारत में गन्ने की खेती पहले से होती थी और अफ्रीकी दासों की तुलना में भारतीय श्रमिक सीधे और अनुशासित थे। इस परिस्थिति ने अंग्रेजों को भारतीय श्रमिकों में दिलचस्पी उत्पन्न की तथा भारत से लगातार इन श्रमिकों को भेजा जाने लगा।

ऐसा नहीं है कि भारत से मॉरीशस पहुंचने वाले सभी मजदूरों की दशा शोचनीय थी बल्कि उनमें से कुछ ऐसी भी थे जिन्होंने अच्छी आर्थिक सम्पन्नता और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। ऐसी ही एक कहानी भारत के बिहार प्रदेश के एक गांव के रहने वाले ग्वाल जाति के व्यक्ति लक्ष्मण की है जो 35 साल की उम्र में 1830 में कलकत्ता से मॉरीशस गए। 1830– 1835 तक लक्ष्मण ने एक शुगर स्टेट में बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य किया। बंधुआ मजदूरी की अवधि समाप्त होने के पश्चात् 1840 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1850 के दशक के बीच उन्होंने शुगर स्टेट में मजदूरों के ओवरसियर के रूप में (पर्यवेक्षक) किया।

इतना ही नहीं मॉरीशस में पूरे अनुबंध काल में इन गिरमिटिया श्रमिकों को मासिक मजदूरी का पांचवां हिस्सा रख लिया जाता था और उसी पैसे को उनकी वापसी की टिकट के लिए खर्च किया जाता था। यदि श्रमिक अगले पांच के लिए रुकने और बंधुआ मजदूरों की तरह काम करने के लिए तैयार हो जाता था तो यह पैसा उसको वापस कर दिया जाता था। कुछ गिरमिटिया मजदूरों ने इस पैसे का उपयोग खेती की जमीन खरीदने के लिए किया और इन खेतों में भी अधिकांश ने गन्ने की ही खेती प्रारम्भ की क्योंकि यह वहां की बहुप्रचलित नकदी कृषि थी। इस तरह एक ऐसा चक्र स्थापित हुआ जिसके माध्यम से मॉरीशस का गन्ना उद्योग और भाातीय गिरमिटिया मजदूरों के बीच एक मजबूत अंर्तसंबंध स्थापित हो गया।

गन्ना उद्योग में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की भूमिका

1834 से 1910 के मध्य मॉरीशस का गन्ना उद्योग का विस्तार मुख्यतः भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के श्रम पर आधारित था। चूंकि गन्ना उत्पादन एक बहु–चरणीय श्रम पर आधारित कृष था, जिसमें प्रत्येक चरण पर श्रमिकों की सक्रिय भूमिका थी। सर्वप्रथम वे जंगलों और झाड़ियों को साफ कर भूमि को कृषि योग्य बनाते थें। इसके बाद खेतों की जुताई, मेड़ों का निर्माण, गन्ने की रोपाई, सिंचाई, निराई–गुड़ाई, खाद डालना तथा फसल की सुरक्षा जैसे कार्य करते थें। फसल तैयार होने पर इसकी कटाई, बंडल बनाना और बैलगाड़ी के माध्यम ये चीनी मिलों तक पहुंचाना भी उन्हीं की जिम्मेदारी होती थी इसी कारण इतिहासकारों ने भारतीय गिरमिटिया मजदूरों को मॉरीशस की चीनी अर्थव्यवस्था की 'रीढ़' कहा है।

गिरमिटिया मजदूरों की कार्य–स्थिति अत्यंत कठिन थी। सामान्यतः उन्हें प्रतिदिन 10 से 12 घण्टे तक अनवरत कार्य करना पड़ता था। वर्षा, तेज धूप या अन्य प्रतिकूल मौसम में भी कार्य बंद नहीं होता था। श्रमिकों को 'निर्धारित लक्ष्य' (टॉस्क मिशन) पूरा करना अनिवार्य था यदि वे अपना निर्धारित लक्ष्य पूरा नहीं कर पाते थें, तब उनकी मजदूरी के कटौती या दण्ड का सामना करना पड़ता था।

महिला गिरमिटिया मजदूरों का योगदान

भारतीय महिलाओं के भी मॉरीशस में गन्ना उद्योग में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे खेतों में पुरूषों के समान कार्य करतीं। गन्ने की रोपाई, निराई, कटाई तथा अन्य कृषि कार्यों में उनकी सक्रिय भागीदारी थी। उन सब कार्यों के अतिरिक्त वे परिवार का देखभाल, बच्चों का पालन–पोषण तथा भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण में भी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों, लोकगीतों, पारिवारिक संस्कारों तथा भारतीय भाषाओं को भी अगली पीढ़ी तक पहुंचाया।

हालांकि महिलाओं को कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, कम प्रतिनिधित्व और कई बार लैंगिक उत्पीड़न जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। इन सबके बावजूद उनका योगदान मॉरीशस के भारतीय समाज के निर्माण के अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

निष्कर्ष

इस तरह 1834–1920 का काल मॉरीशस के इतिहास में परिवर्तनकारी युग था। इस अवधि में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के अपने कठिन परिश्रम से गन्ना उद्योग को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया उनके बगैर मॉरीशस का औपनिवेशिक आर्थिक विकास संभव नहीं था।

हालांकि अनुबंधित श्रम प्रथा में अनेक प्रकार की कठिनाइयां और शोषण मौजूद थे, फिर भी इन भारतीय गिरमिटिया श्रमिकों ने धैर्य, परिश्रम और सामुदायिक एकता के बल पर इन परिस्थितियों का सामना किया। इन लोगों ने केवल कृषि उत्पाद में योगदान नहीं दिया, बल्कि मॉरीशस के सामाजिक, सांस्कृतिक और जनांनकिकी स्वरूप को भी गहराई से प्रभावित किया।

आज मॉरीशस की राष्ट्रीय पहचान में भारतीय लोगों का महत्वपूर्ण स्थान है। इस ऐतिहासिक अपनी उपलब्धि को नींव उन गिरमिटिया श्रमिकों ने रखी, जिन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी अपने श्रम, संस्कृति और आत्मसम्मान को बनाए रखा। इस तरह मॉरीशस के गन्ना उद्योग और भारतीय गिरमिटिया मजदूरों का इतिहास केवल आर्थिक विकास का इतिहास नहीं है बल्कि मानव संघर्ष, प्रवासन, श्रम और सांस्कृतिक पुन–निर्माण का भी इतिहास है।

सन्दर्भ सूची –

1. ह्यूग टिंकर, 'ए न्यू सिस्टम ऑफ स्लेवरी' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. मरीना कार्टर, 'सर्वेंट्स, सरदार्स एण्ड सेटलर्स' (1834–1874)', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. अमित कुमार मिश्रा, 'मॉरीशस' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
4. भास्वती मुखर्जी, 'द इन्चेंजर्ड एण्ड दियर रूट' रूपा पब्लिकेशंस प्राइवेट लि०, नई दिल्ली।
5. प्रहलाद रामशरण, 'मॉरिशस का सुबोध इतिहास' स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., नई दिल्ली।
6. डॉ. विनय कुमार शर्मा, 'भारतीय संस्कृति से महकता मॉरिशस, विश्व पुस्तक प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. सत्येन्द्र पीर्थू, दे केम टू मॉरिशियन शोर्स', आप्रवासी घाट ट्रस्ट फण्ड, पोर्ट लुईस, मॉरीशस।
8. दिनेश चंद्र श्रीवास्तव, 'गिरमिटिया मजदूर और उनके वंशज', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. रिचर्ड बी० एलेन, 'स्लेव्स, फ्रिडमैन एण्ड इन्चेंजर्ड लेबरर इन कोलोनियल मॉरीशस, कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस।

'मुगल–ए–आजम' : एक कालजयी प्रेम कहानी

डॉ. चित्तरंजन कुमार*

शोध - सार-

'मुगल-ए-आजम' हिंदी सिनेमा के सबसे बेहतरीन फिल्मों में से एक है।इस फिल्म में सलीम और अनारकली के प्रेम को बड़े ही नज़ाकत से दिखाया गया है।लगभग 16 साल में यह फिल्म बनकर तैयार हुई।।फिल्म को सबसे उत्कृष्ट फिल्म बनाने के लिए समय के साथ पैसा भी पानी की तरह बहाया गया। फिल्म के भव्य दृश्यों को फिल्माने के लिए भव्य सेट बनाए गये।शीशमहल के दृश्य को फिल्माने के लिए शीशमहल का सेट बनाया गया और इसकी सजावट के लिए बेल्जियम से शीशे मंगाये गए।सिर्फ इस शीशमहल के सेट बनाने के लिए 15 लाख रुपये खर्च किए गए जो उस समय एक पूरी फिल्म के निर्माण का खर्च था।इस फिल्म में पृथ्वीराज कपूर अकबर,दिलीप कुमार सलीम और मधुबाला अनारकली के किरदार को निभाया।फिल्म के निर्देशक के आसिफ थे जिन्होंने पूरी तन्मयता के साथ फिल्म बनाई।फिल्म के एक -एक दृश्य को बड़ी ही नज़ाकत से शूट की गई।उन्होंने 'मुगल- ए- आजम' को बेहतरीन से बेहतरीन फिल्म बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।कहा जाता है कि ताजमहल और 'मुगल-ए -आजम' बनाना इतना आसान होता तो बहुत सारे ताजमहल और 'मुगल-ए-आजम' बन गया होता। भले ही यह फिल्म महान मुग़लों पर बनी है ,लेकिन मूल रूप से यह एक प्रेम कहानी है जो 1922 में इम्तियाज अली ताज के नाटक ' अनारकली' पर बनी है। अनारकली मुग़ल काल में अस्तित्व में थी या नहीं इस पर प्रश्न जरूर उठते रहेंगे।साथ ही यह इतिहास है या किंवदंती? यह प्रश्न भी हमेशा उठता आया है। के.आसिफ मुगलों की ऐतिहासिकता पर फिल्म नहीं बनाना चाहते थे बल्कि एक प्रेम कहानी बनाना चाहते थे। के आसिफ सलीम और अनारकली के प्रेम कहानी की किंवदंती पर 'मुगल-ए- आजम' बनाई। 'मुगल-ए-आजम' एक क्लासिक फिल्म है।रिलीज के बाद इस फिल्म ने बॉक्स ऑफिस के सारे रिकॉर्ड दिया और अगले 15 सालों तक इस रिकॉर्ड को बरकरार रखा।इस फिल्म की टिकट खरीदने के लिए पाकिस्तान,म्यांमार और श्रीलंका से लोग आते थे।लोग तीन तीन दिनों तक टिकट के लिए कतारों में खड़े रहते थे और रात सड़कों पर ही बिताते थे।यह फिल्म एक क्लासिक फिल्म है जो प्रेम और फर्ज के बीच संघर्ष पर आधारित है।यह फिल्म हिंदी के 10 सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में शामिल है। 2004 में इस इस फिल्म का रंगीन संस्करण रिलीज हुआ और यह भी व्यावसायिक रूप से सफल रही।

बीज शब्द - फिल्म, क्लासिक, निर्देशक, प्यार, फर्ज, सर्वश्रेष्ठ, कालजयी, अभिनेता, ऐतिहासिक, किंवदंती, मुगल, नर्तकी, प्रेमकहानी, संघर्ष, दरबारी, बजट, समस्या, मौत, बादशाह, राजकुमार, शूटिंग, साउंड ट्रैक, संगीत, फिल्मांकन, शीशमहल, प्रेमप्रसंग, नाटक, भूमिका, किरदार, शान, व्यावसायिक, सौंदर्य, सेट, प्रिंट, रिश्ते, महाकाव्यात्मक।

मुग़ल-ए-आज़म (महान मुगल) 1960 में बनी एक भारतीय ऐतिहासिक महाकाव्यात्मक फिल्म है जिसका, निर्माण और निर्देशन के आसिफ ने किया था। पृथ्वीराज कपूर,दिलीप कुमार, मधुबाला और दुर्गा खोटे अभिनीत फिल्म 'मुग़ल-ए - आजम' राजकुमार सलीम और दरबारी नर्तकी अनारकली के प्रेम प्रसंग की कहानी है। सलीम के पिता अकबर इस रिश्ते को स्वीकार नहीं करते हैं,जिसके कारण पिता और पुत्र के बीच युद्ध होता है। यह फिल्म भले ही ऐतिहासिक महान मुग़लों की पृष्ठभूमि पर बनी है लेकिन दरअसल यह एक प्रेमकहानी है। अनारकली मुगल काल में अस्तित्व में थी या एक काल्पनिक पात्र?लेकिन जनमानस में सलीम और अनारकली का प्रेम एक किंवदंती जरूर बन गई है। किसी भी इतिहासकार ने इस प्रेम कहानी पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है। के आसिफ महान मुग़लों की ऐतिहासिकता पर फिल्म

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दयाल सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल–chittaranjan.kumar2009@gmail.com

नहीं बनाना चाहते थे बल्कि वे एक प्रेम कहानी बनाना चाहते थे। इसीलिए सलीम और अनारकली की किंवदंती को आधार बनाकर 'मुगल- ए-आजम' फिल्म बनाई।डायरेक्टर के आसिफ द्वारा निर्देशित मुग़ल-ए-आज़म एक क्लासिक फिल्म है, जो प्रेम और फर्ज के बीच के संघर्ष को दर्शाती है।

के .आसिफ की इस टाइमलेस फिल्म में कुछ ऐसे पल है जब लगता है जैसे धरती रुक सी गई और सूरज चांद सितारे सब बादशाह अकबर के दरबार में हो रहे इस जबरदस्त नाटक को देखने के लिए थम से गए हैं।[1]

इस फिल्म के संदर्भ में ज्योत्सना भोंडवे (वेबदुनिया) कहती है कि, अगर सिर्फ पैसों से ही ताजमहल या मुग़ल-ए-आज़म बन बन जाती तो अब तक अनगिनत ताजमहल और मुग़ल-ए-आज़म बन चुकी होती। लेकिन आज तक ना दूसरा ताजमहल बना पाया ना दूसरा मुग़ल-ए-आज़म बनी। दाद देनी होगी के आसिफ के जिद की जिसने दुनिया के सामने इस कहानी को यह कहते हुए पेश किया-

मुहब्बत हमने माना, जिंदगी बर्बाद करती है
ये क्या काम है कि मर जाने पर दुनिया याद करती है
किसी के इश्क में....[2]।

यह फिल्म 150 सिनेमा घरों में एक साथ प्रदर्शित हुई और इसमें पहले ही हफ्ते 40 लाख का कारोबार किया। 'मुग़ल-ए-आज़म' हिंदी फिल्मों की पहले 10 फिल्मों में अपनी जगह बनाने वाली फिल्म है।

इस फिल्म के निर्माण से जुड़े हुए शख्सियत निम्नलिखित है-

निर्देशक	-	के.आशिफ़
पटकथा	-	अमन, कमाल अमरोही, के आसिफ, वजाहत मिर्जा, एहसान रिजवी।
कहानी	-	इम्तियाज अली ताज द्वारा लिखित नाटक पर आधारित
प्रोडक्शन	-	शाहपुर की पल्लोनजी मिस्त्री
अभिनय	-	पृथ्वीराज कपूर, दिलीप कुमार, मधुबाला,दुर्गा खोटे
संगीत	-	नौशाद
रिलीज़	-	5 अगस्त 1960

'मुग़ल-ए-आज़म' के निर्माण की शुरुआत 1944 में हुई जब के आसिफ ने इम्तियाज अली ताज द्वारा लिखित 1922 के नाटक 'अनारकली' को पढ़ा, जो सम्राट अकबर (1556 -1605) के शासनकाल पर आधारित है। निर्माण में देरी और वित्तीय अनिश्चितता की समस्या बनी रही। 1950 के दशक की शुरुआत में मुख्य शूटिंग शुरू होने से पहले ही परियोजना ने अपना फाइनेंसर खो दिया और कलाकारों में पूरी तरह बदलाव हो गया। 'मुग़ल-ए-आज़म' का निर्माण किसी भी पिछली भारतीय फिल्म से अधिक लागत पर हुआ। इसके एक गीत के दृश्य का बजट लगभग 15 लाख रुपए की थी, जो कि उस दौर के एक पूरी फिल्म के सामान्य बजट से अधिक था। भारतीय,शास्त्रीय और लोक संगीत से प्रेरित इसके साउंडट्रैक में पार्श्व गायिका लता मंगेशकर मोहम्मद रफी, शमशाद बेगम, और शास्त्रीय गायक बड़े गुलाम अली खान द्वारा गाए गए 12 गीत शामिल है । इसे अक्सर हिंदी सिनेमा के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है।

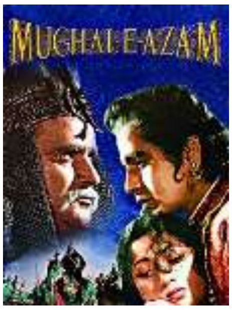

इस फिल्म के रिलीज होने के समय की कुछ रोचक घटनाएं हैं जिससे मैं आप लोगों से साझा करना चाहता हूं। दुल्हन की तरह सज कर मराठा मंदिर तैयार थी और मुंबई में 5 अगस्त 1960 को रात 9:00 बजे हाथी पर सवार होकर 'मुग़ल-ए-आजम' की प्रिंट लाई गई। मराठा मंदिर हॉल में पचासी प्रतिशत श्वेत- श्याम और 15% रंगीन फिल्म पर से पर्दा उठा। हॉल में दर्शकों को सोना आता रहा,धीरे-धीरे उबासी और कानाफूसिया बढ़ने लगी। 19 रील से शुरू होकर आखिर तक माहौल में तो मरघट की शांति छा गई। आसिफ के घर में विज्ञापन को लेकर चर्चा के लिए जमा सभी लोगों में उत्साह नदारद था। एक मत से सब ने कहा कि फिल्म पूरी तरह फ्लॉप है,सिर्फ और सिर्फ आसिफ पर इस मुर्दानगी का कोई असर नहीं था। उन्होंने कहा-'सिर्फ हफ्ते भर रुको फिल्म चलेगी'। लेकिन उनका भरोसा करने को कोई तैयार नहीं था।

इस फिल्म को देखने के लिए दर्शकों के बेचैनी का यह आलम था कि पाकिस्तान म्यांमार श्रीलंका से लोग आए थे, क्योंकि आज की तरह ईमेल से बुकिंग की सुविधा उस समय नहीं होती थी। इसलिए दर्शकों को टिकट के लिए तीन-तीन दिन पहले से कतार लगानी पड़ी और वे रात को भी कतार में ही सोते थे।

शुरू में के.आसिफ दिलीप कुमार को फिल्म में नहीं लेना चाहते थे। दिलीप कुमार का नाम सुनकर उन्होंने हंसकर जवाब दिया-'किसी नए घोड़े पर दांव लगाकर मुझे 'मुग़ल-ए-आज़म' का ऐरावत दलदल में उता रने की कटाई ख्वाहिश नहीं।' के.आसिफ ने अपने सपने को पूरा करने के लिए अकबर के दीवाने शापूर पल्लोन जी को साधा। दूसरी ओर अनारकली के रोल को वे नरगिस को देना चाहते थे, लेकिन फिल्म 'हलचल' में दिलीप कुमार के साथ विवाद के कारण नरगिस ने यह रोल करने से इनकार कर दिया।उसके बाद नूतन को इस फिल्म के अनारकली के लिए लेने की बात की गई। आखिर में बगैर अनारकली के फिल्म का काम आगे बढ़ा। अकबर यानी पृथ्वीराज कपूर का काम देख उनके अतिरिक्त अकबर की भूमिका के लिए किसीऔर की कल्पना गले नहीं उतरती। लेकिन सेट पर पृथ्वीराज जी भी अक्सर आसिफ के सिर पर सवार रहते थे 'मैं अकबर के रोल को कैसे करु ? तब आसिफ ने उन्हें कुछ टिप्स दी कि सेट पर तो छोड़िए आप घर में भी बादशाह की तरह पेश आइए। कोई भी काम खुद ना करते शाही अंदाज में सिर्फ हुकुम दीजिए। हमेशा आवाज में हुकुम का बेस रखें। यह बातें पृथ्वीराज जी की आदत में इस कदर शामिल हो गई की जानकारी के मुताबिक उनकी आवाज ही बदल गई।(3)

उधर सलीम के किरदार को लेकर दिलीप कुमार भी कुछ नाराज ही रहे। कहानी सुनाते वक्त उन्हें लगा था कि सारा कुछ अकबर के ही इर्द गिर्द है, लेकिन के. आसिफ के समझाने पर ही दिलीप कुमार माने। सलीम के लिए खास तौर पर बनी विग लंदन से मंगवाई गई। बावजूद इसके दिलीप कुमार का बुदबुदाना जारी ही था। तब झल्लाकर आसिफ ने कहा-मैं 'सलीम-ए-आज़म' नहीं बनाना चाहता हू मुझे 'मुग़ल-ए-आज़म' बनाना है।(4)

'मुग़ल-ए-आज़म' उस समय की सबसे व्यापक रूप से रिलीज हुई (150 प्रिंट) भारतीय फ़िल्म थी और दर्शक अक्सर टिकटों के लिए दिन भर कतार में खड़े रहते थे। 5 अगस्त 1960 को रिलीज हुई इस फिल्म ने भारत में बॉक्स ऑफिस के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए और सबसे अधिक कमाई करने वाली फिल्म बन गई । यह उपलब्धि इसने 15 सालों तक बनाए रखी। इस फिल्म में 30 मिनट के हिस्से को रंगीन फिल्माया गया था। 12 नवंबर 2004 को रिलीज हुआ रंगीन संस्करण भी व्यावसायिक रूप से सफल रहा।

इस फिल्म की शूटिंग के दौरान कई रोचक किस्से और कहानियां है, जिसको यहाँ साझा करना जरूरी है। अकबर बादशाह के लिए आसिफ ने 4000 रुपए के जूते खरीदे।यह रकम उस वक्त के हिसाब से काफी भारी थी, क्योंकि उस दौर में स्कूल के हेड मास्टर की तनख्वाह ही मात्रा 20 रुपए थी। ऐसे में आर.डी माथुर (कैमरामैन) ने आसिफ से कहा - कमरुद्दीन

भव्य निर्माण के नाम पर बेवजह खर्च? क्या तुम्हारे जूते कैमरे में नजर भी आएंगे? तब अपने खास अंदाज में सिगरेट सुलगाते हुए आसिफ ने हंसकर कहा- ' अरे माथुर मेरे जूते कितने महंगे हैं? इस बात का अंदाजा जब मेरे अकबर को होगा तब उसकी चाल और बोली में जो एक अलहदा शान होगी और उसके जूते नहीं उस अकबर के चेहरे पर नजर आने वाली शान मुझे कमरे में कैद करनी है।(5)

शीश महल के सेट के निर्माण में पूरे 2 साल लगे। 35 फीट ऊंचे 80 फीट चौड़े और 150 फीट लंबे इस शीश महल में बेल्जियम के शीशे का इस्तेमाल किया गया। इसके लिए शापूर जी ने 15 लख रुपए गिने थे। शीश महल के रंग-बिरंगे शीशे के चलते प्रकाश परावर्तित होने पर अगर फिल्म का फिल्मांकन नहीं हुआ तो मैं सारे शीशे फोड़ दूंगा, आसिफ ने टेक्नीशियन से कहा। इधर 8 साल हो गए पर फिल्म पूरी होने के आसार नजर नहीं आ रहे थे, तब शापूर ने निर्देशन की जिम्मेदारी सोहराब मोदी को सौंपते हुए 30 दिन में फिल्म पूरी करने को कहा। लेकिन रजामंदी देने से पहले शीश महल का सेट नए सिरे से बनाने की चर्चा जोरों पर थी। इतने में गर्जदार आवाज आई 'जो मेरा शीश महल तोड़ने की हिम्मत करेगा उसका पैर टूटेगा'। हालांकि बाद में आसिफ ने मोदी से बदतमीजी की माफी मांगते हुए एक दृश्य फिल्माकर निगेटिव लंदन भेजने की इजाजत मांगी। शापूर चिढ़े जरूर थे,लेकिन इनकार नहीं कर सके। यूनिट डरते डरते नतीजे का इंतजार कर रही थी कि लंदन की लैब ने फैसला सुनाया- ' अप्रतिम' ।

एक बार की बात है सोहराब मोदी स्टूडियो से बाहर निकले और किस्मत से उनकी गाड़ी खराब हो गई। कंपनी की गाड़ी उन्हें छोड़ने आई तब कंपनी के ड्राइवर ने खुश होकर मोदी से कहा- ' साहब ये आसिफ मियां भी अजब इंसान है। यहां शूटिंग के लिए अनारकली के बदन पर खरे हीरे मोती की जिद करता है। दिन में हीरे पन्नों से खेलता है, लेकिन रहता है सादे घर में। उसके बदन पर पहने कुर्ते पायजामे के अलावा एकाध जोड़ी ही और होगी। सोता भी है चटाई पर, लेकिन पगार हाथ आई नहीं कि यार दोस्तों में बंट जाती है, बहुत भला आदमी है साब। घर पहुंचते ही मोदी ने शापूर को फोन लगाया - 'आपका आसिफ नामक निर्देशक पैदाइशी कलाकार है। अपनी फिल्म का भला चाहते हैं तो इसका निर्देशन मुझे तो क्या किसी और को भी मत दीजिए। यह फिल्म आसिफ को ही पूरा करने दे।'(6)। इसके बाद के आसिफ फिर से सपने देखने लगे। इस तरह आसिफ फिल्म इंडस्ट्री को सबसे बेहतरीन क्लासिक फिल्मों में से एक फिल्म बनाकर दी।

फिल्म में सलीम ने अपने प्यार अनारकली को पाने के लिए बादशाह के खिलाफ बगावत की थी, जो नाकाम हो गई थी और उसे पकड़ कर दरबार में लाया जाता है। 5 मिनट तक बाप और बेटे के बीच यह टकराव चलता है और वे दोनों एक दूसरे पर आरोप लगाते हैं। अकबर सलीम से कहते हैं कि अगर वह अनारकली को छोड़ दे तो उसे माफ कर दिया जाएगा। सलीम जवाब देता है ' ताकि आप उसे मौत की सजा दे सके'।

अकबर - बिल्कुल ।

जब अकबर सलीम को दोबारा अनारकली को सरेंडर करने को कहते हैं तो सलीम जवाब देता है ' मैं अनारकली को आपको नहीं दे सकता।

अकबर कहते हैं- तो फिर तुम्हें राजगद्दी से हमेशा के लिए दूर कर दिया जाएगा ।

सलीम जवाब देता है-मैं यह स्वीकार करता हूं, लेकिन मैं उस ताज को स्वीकार नहीं करता, जिसकी नींव अनारकली की लाश पर रखी गई हो।

अकबर गुस्से में कहते हैं- तुम अपने प्यार की आग में मुगलों का ताज पिघलाकर एक नर्तकी के पैरों की पायल बनाना चाहते हो? तुम हिंदुस्तान की पवित्र गद्दी पर एक नाचने वाली लड़की को बैठना चाहते हो? इस बार सलीम का गुस्सा फूट पड़ता है और वह जोर से चिल्लाता है- और आप…इस भरे दरबार में अपनी होने वाली बहू को बेइज्जत करना चाहते हैं?

अकबर गरजते हैं -चुप रहो

अब सलीम बिल्कुल नहीं रुकता और कहता है' अगर बादशाह सिर्फ अपनी हार का बदला लेना चाहते हैं तो उन्हें अनारकली नहीं मिलेगी उन्हें अपने ही बेटे की जान लेनी होगी। यह सुनकर पूरा दरबार सन्न में रह जाता है। अकबर के

चेहरे पर गुस्से के साथ-साथ दुख भी दिखाई देता है। आखिरकार वह सलीम को मौत की सजा सुनाते हैं और कहते हैं कि ' इंसाफ मेरे दिल के मेरे बेटे से भी ज्यादा करीब है।'

सलीम सजा स्वीकार करते हुए कहता है ' एक पत्थर दिल बादशाह मौत के अलावा और दे ही क्या सकता है?

फिल्म में सलीम और अनारकली का प्रेम दिखाया गया है, जिन्हें पर्दे पर दिलीप कुमार और मधुबाला ने निभाया है। असल जिंदगी में भी दोनों एक दूसरे से प्यार करते थे, लेकिन शूटिंग के दौरान ही उनका रिश्ता टूट गया था। इस दर्द ने फिल्म के दृश्यों को और भी ज्यादा वास्तविक बना दिया।

यह फिल्म एक किंवदंती पर आधारित है लेकिन, इसे कम से कम दो ग्रन्थों द्वारा विश्वसनीयता मिलती है जो, सम्राट अकबर (1556- 1605) के ऐतिहासिक काल के दौरान अनारकली के अस्तित्व की पुष्टि करते हैं। इन पुस्तकों में कहा गया है कि 1605 में जब सलीम सम्राट जहांगीर बने तब उन्होंने लाहौर में अनारकली की कब्र पर एक संगमरमर का मकबरा बनवाया। मकबरे पर एक फारसी शिलालेख है- "आह! काश मैं अपने प्यार का चेहरा एक बार फिर देख पाता तो मैं कयामत के दिन तक अपने ईश्वर का शुक्र अदा करता।" जिस नाटक पर यह फिल्म आधारित है उसके लेखक इम्तियाज अली ताज तक का मानना था कि इस किंवदंती का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।(7)

लेकिन इतिहासकारों ने सुझाव दिया है कि अनारकली एक चित्रकार, नर्तकी या दरबारी हो सकती है या अकबर की पत्नियों में से एक और सलीम के सौतेले भाई राजकुमार दानियाल की मां हो सकती है।(8)

'मुग़ल-ए-आज़म' फिल्म ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कई तरह की छेड़छाड़ करती है। इतिहासकार अलेक्स वॉन टुनजेलमैन का कहना है कि हालांकि सलीम 18 साल की उम्र से ही शराब और अफीम का सेवन करता था, लेकिन वह फिल्म में दिखाए गए शरारती लड़के जैसा नहीं था। फिल्म में सलीम जब सैन्य सेवा से लौटता है तो उसे एक सौम्य और रोमांटिक नायक के रूप में दिखाया गया है, जबकि असली सलीम को एक क्रूर शराबी के रूप में दर्ज किया गया है जो अक्सर लोगों को पीट-पीट कर मार डालता था। असली सलीम ने अपने पिता के खिलाफ विद्रोह किया था और सम्राट बनने के लिए उन्हें हटाने की कोशिश की ।इतना ही नहीं 1602 ईस्वी में अकबर के प्रिय मित्र अबू अल-फजल की हत्या भी करवाई थी, लेकिन फिल्म इन कार्यों को अनारकली से शादी करने की इच्छा से जोड़ती है जो ऐतिहासिक रूप से गलत है।(9) इसके अलावा फिल्म के सेट, वेशभूषा और संगीत में भी विसंगतिया थी।

शीश महल जो वास्तव में रानी का शाही स्नान घर होता था फिल्म में एक नृत्य कक्ष के रूप में दिखाया गया है और वह बहुत ही बड़ा है। हालांकि कहानी 16वीं शताब्दी में घटित होता है फिर भी 19वीं शताब्दी की संगीत और नृत्य शैलियों को दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए ठुमरी, जो 19वीं शताब्दी में विकसित एक अर्धशास्त्रीय संगीत शैली है को,कत्थक शैली में एक नृत्य अनुक्रम में अपनाया गया है जो, 16वीं शताब्दी की नृत्य शैली है।(10)

मुग़ल-ए-आज़म एक पारिवारिक इतिहास है जो पिता पुत्र के बीच मतभेदों, परिवार से ऊपर जनता के प्रति कर्तव्य और महिलाओं विशेष कर दरबारी महिलाओं के संघर्ष और कठिनाइयों को उजागर करता है। राहेल ड्वायर जिन्होंने ' फिल्मिंग द गॉड्स रिलिजन एंड इंडियन सिनेमा'नामक पुस्तक लिखी है के अनुसार यह फिल्म हिंदू और मुस्लिम धर्म के बीच धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाती है। उदाहरण के तौर पर हिंदू रानी जोधा बाई का मुस्लिम अकबर के दरबार में उपस्थित होना अनारकली द्वारा हिंदू भक्ति गीत गाना और अकबर का जन्माष्टमी समारोह में भाग लेना जिसमें, अकबर का जन्माष्टमी समारोह में कृष्ण की मूर्ति वाले झूले को झूलाने के लिए रस्सी खींचते हुए दिखाया गया है।(11) फ़िल्म समीक्षक मुकुल केशवन ने टिप्पणी की है कि- उन्हें हिंदू- मुस्लिम प्रेम पर बनी कोई ऐसी फिल्म याद नहीं आती जिसमें महिला(जोधाबाई) हिंदू हो।(12) विद्वान भास्कर और एलेन ने फिल्म को' इस्लामी संस्कृति का जीवंत चित्रण' बताया जो इसके अलंकृत सेट वाले कव्वाली दृश्य जैसे संगीतमय दृश्यों और शुद्ध उर्दू संवादों में स्पष्ट है।(13) पूरी फिल्म में मुसलमान को शासक वर्ग के रूप में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है जो न केवल अलग तरह के कपड़े पहनते हैं, बल्कि जटिल फारसी कृत संवाद भी बोलते हैं । उन्हें मुख्य धारा से अलग और विशिष्ट दिखाया गया है।

फिल्म विशेषज्ञ स्टीफन टी ओ का मानना है कि मुग़ल-ए-आज़म एक राष्ट्रीय रूपक है, जो राष्ट्रीय पहचान पर जोर देने के लिए इतिहास और विरासत को अपनाने का एक शैली या तरीका है। उनका मानना है कि बाहर का अहंकार राज की शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और अनारकली की भावना जो अत्यंत व्यक्तिगत है,निजी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है।(14) टी ओ स्टीफंस कहते हैं कि सामाजिक वर्ग भेद और सत्ता पदानुक्रम पर विजय प्राप्त करने वाले प्रेम का विषय साथ ही फिल्मांकन की भव्यता,फिल्म के आकर्षण में योगदान देती है।(15) लेखक आशीष नंदी ने संवाद की काव्यात्मक गुणवत्ता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि- 'मुग़ल-ए-आज़म' के पात्र केवल बोलते नहीं है, बल्कि वह संवाद को परिष्कृत करते हैं, उसे सारगर्भित करते हैं, उसे बहुआयामी चमकदार रत्नों में

ढालते हैं, वे साधारण भाषा को कविता में बदल देते हैं।(16) द हिंदू की गौरी रामनारायण ने भी फिल्म में संवादों की शक्ति पर जोर दिया है, क्योंकि वे न केवल इस पीरियड ड्रामा का माहौल बनाते हैं, बल्कि चरित्र और स्थिति को भी उकेरते हैं। हर शब्द शक्ति और भावना से भरा है।(11)

आयोवा विश्वविद्यालय के विद्वान फिलिप लुटगेनडॉर्फ ने कहा है कि यद्यपि भावुक व्यक्तिगत प्रेम और पारिवारिक कर्तव्य के बीच संघर्ष का विषय हिंदी फिल्म निर्माण में बहुत आम है और इसके अनगिनत सिनेमा रूपांतरण मौजूद है, फिर भी के आसिफ द्वारा इस विषय का अत्यधिक विस्तार अपने आप में अद्वितीय है।(17)

मूल कहानी से एक बड़ा अंतर यह है कि इम्तियाज अली ताज की कहानी पर आधारित पहले की 'अनारकली' फिल्मों का दुखद अंत होता था जबकि के आसिफ ने अपेक्षाकृत सुखद अंत किया है, जिसमें अकबर अनारकली को उसकी जेल की दीवार के नीचे बने सुरंग के गुप्त मार्ग से भागने की अनुमति देकर उसे क्षमादान दे देता है हालांकि उसके बेटे को यह विश्वास करने में पीड़ा सहनी पड़ती है कि वह मर गई है।(18)

मुग़ल-ए-आजम को भारतीय आलोचकों से सर्वत्र प्रशंसा मिली और फिल्म के हर पहलू की सराहना की गई। फिल्म फेयर में 26 अगस्त 1960 को प्रकाशित एक समीक्षा में इसे ' इतिहास रचने वाली फिल्म...कला जगत के विभिन्न क्षेत्रों से आए रचनात्मक कलाकारों की एक टीम का काम बताया गया। इसे इसके निर्माता श्री के आसिफ की कल्पना मेहनत और भव्यता को श्रद्धांजलि के रूप में भी वर्णित किया गया है। इसकी भव्यता इसकी सुंदरता और फिल्म कलाकारों के प्रदर्शन के लिए इसे भारतीय फिल्मों में एक मील का पत्थर होना चाहिए।(19) 2000 से समीक्षकों ने इस फिल्म को भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक 'क्लासिक मानदंड 'या 'मिल का पत्थर' बताया है। 2011 में अनुपमा चोपड़ा ने इसे अब तक बनी सर्वश्रेष्ठ हिंदी फिल्म और हिंदी फिल्म शैली का चरमोत्कर्ष कहा है।विशेष रूप से अभिनय, पिता पुत्र के नाटक और गीत दृश्य का उल्लेख करते हुए रेडिफ डॉट कॉम के दिनेश रहेजा ने फिल्म को अवश्य देखने योग्य क्लासिक बताते हुए कहा-कला का एक काम ही इस ऐतिहासिक फिल्म का वर्णन करने के लिए एकमात्र शब्द है, इसके भाव,महल और फव्वारों का दृश्य एक महाकाव्य जैसा है और जिसको दिल छू लेने वाले रोमांस में पंख के स्पर्श जैसी कोमलता है।(20) प्लैनेट बॉलीवुड की सुजाता गुप्ता ने फिल्म को 10 में से 9 सितारे देते हुए इसे अवश्य देखने योग्य बताया है जिसने वीडियो से लोगों की रुचि को आकर्षित किया है।(21)

स्टारडस्ट के लिए अपनी समीक्षा में के के राय ने कहा-यह कहा जा सकता है कि 'मुग़ल-ए-आजम' की भव्यता और प्राचीन चरित्र को दोहराया नहीं जा सकता और इसे इस देश में बनी सबसे महत्वपूर्ण फिल्मों में से एक के रूप में याद किया जाएगा।(22) बीबीसी की लौरा बुशेल ने इस फिल्म को पांच में से चार सितारे दिए हैं और इसे भारतीय सिनेमा और सिनेमा भव्यता दोनों के लिए एक बेंचमार्क फिल्म मानते हुए टिप्पणी की है कि- 'मुग़ल-ए-आज़म' हर तरह से एक महाकाव्यात्मक फिल्म थी।(23) ब्रिटिश फिल्म संस्थान के लिए फिल्म की समीक्षा करते हुए नयन रामचंद्रन ने धार्मिक सहिष्णुता के चित्रण पर ध्यान दिया और कहा कि फिल्म में एक कोमल हृदय है।(24) नसरीन मुन्नी कबीर जिन्होंने के आसिफ की 'मुग़ल-ए-आज़म' के अमर संवाद पर पुस्तक लिखी है उन्होंने भारतीय सिनेमा में इसके चिरस्थाई महत्व के लिए फिल्म की तुलना कोहिनूर हीरे से की है।(25) इस फिल्म को आठवें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म का पुरस्कार भी मिला है।

समग्रतः कह सकते है कि 'मुगल -ए -आजम' हिंदी फिल्म इंडस्ट्री की सबसे बेहतरीन क्लासिक प्रेम कहानी है।अपनी भव्यता और खूबसूरती के लिए यह फिल्म एक अविस्मरणीय फिल्म है। भले यह ऐतिहासिक रूप से इसमें कुछ त्रुटियां हो लेकिन जनमानस के बीच फैले सलीम और अनारकली के किंवदंती पर आधारित होकर भी हिंदी फिल्म के इतिहास में सबसे बेहतरीन प्रेमकहानी बन गई। व्यावसायिक रूप से यह फिल्म अपने समय की सबसे बड़ी सफल फिल्म थी और अगले 15 सालों तक सबसे बड़ी हिट फिल्म बनी रही। 'मुगल-ए-आजम' और ताजमहल बार बार नहीं बनते,बल्कि सिर्फ एक बार बनती है।

संदर्भ सूची -

1. संदीपन शर्मा, आज तक,रेट्रो रिव्यू,24 अगस्त 2025
2. ज्योत्सना भोंडवे, वेबदुनिया।
3. ज्योत्सना भोंडवे, वेबदुनिया।
4. ज्योत्सना भोंडवे, वेबदुनिया।
5. ज्योत्सना भोंडवे, वेबदुनिया।
6. ज्योत्सना भोंडवे, वेबदुनिया।
7. चक्रवर्ती सुमिता.एस (1993) भारतीय लोकप्रिय सिनेमा में राष्ट्रीय पहचान 1947 - 1987 यूनिवर्सिटी ऑफ़ टैक्सास प्रेस 4 में 2016 को संग्रहित
8. एलेक्स वॉन टुनजेलमैन ,14 फरवरी 2013, मुग़ल-ए-आज़म: इतिहास की असली रंग को सही ढंग से छुपाना, द गार्जियन
9. एलेक्स वॉन टुनजेलमैन ,14 फरवरी 2013, मुग़ल-ए-आज़म: इतिहास की असली रंग को सही ढंग से छुपाना, द गार्जियन
10. आरिफ सलीम-2003, वेशभूषा सार और कपड़ा हिंदी सिनेमा का विश्व कोष, पृष्ठ संख्या- 233
11. राहेल ड्वायर, फिलिंग द गॉड्स रिलिजन एंड इंडियन सिनेमा,पृष्ठ -116
12. अहमद ओमेर,8 फरवरी 2008, एक कहानी, आउटलुक खंड -48,अंक -7,पृष्ठ -76- 77
13. स्टीफन टी ओ,2012, एशियन सिनेमा अनुभव : शैलियां स्थान सिद्धांत, रूटलेज, पृष्ठ संख्या -57
14. स्टीफन टी ओ,2012, एशियन सिनेमा अनुभव : शैलियां स्थान सिद्धांत, रूटलेज, पृष्ठ संख्या -59
15. स्टीफन टी ओ,2012, एशियन सिनेमा अनुभव : शैलियां स्थान सिद्धांत, रूटलेज, पृष्ठ संख्या -57
16. नंदी आशीष, हमारी इच्छाओं की गुप्त राजनीति: निर्दोषता, दोष और भारतीय लोकप्रिय सिनेमा, पालग्रेव मेकमिलन मूल रूप से 2 में 2016 को संग्रहित।
17. रामनारायण गौरी, 20 मार्च 2007, एक मिथक जो क्लासिक बन गया, द हिंदू
18. लुटगैंडोंरफ,फिलिप, मुगल - ए - आजम (महान मुगल) दक्षिण एशियाई अध्ययन कार्यक्रम, आयोवा विश्वविद्यालय 16 नवंबर 2014
19. पावेल्स, हाइडी आर एम, आदर्श देवी: शास्त्रों और परदे पर सीता और राधा, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2008) पृष्ठ127
20. कल फिर से, फिल्मफेयर फाइलों से…1960 के दशक की समीक्षाएं, फिल्म फेयर प्रिंट संस्करण- 7 सितंबर 2007 को संग्रहित।
21. रहेजा दिनेश, 15 फरवरी 2003 मुग़ल- ए-आज़म एक कलाकृति, rediff.com
22. गुप्ता सुजाता, 20 अगस्त 1996, फ़िल्म समीक्षा मुग़ल-ए-आज़म, प्लेनेट बॉलीवुड
23. राय के के, 4 जनवरी 2008, मुग़ल-ए-आज़म स्टारडस्ट
24. रामचंद्र नयन, मुग़ल- ए, ब्रिटिश फिल्म संस्थान 6 जून 2012
25. सिन्हा मीनाक्षी, 5 अगस्त 2010, 50 वर्ष बाद दिलीप कुमार ने अपनी उत्कृष्ट कृति 'मुग़ल ए आजम' को याद किया, द टाइम्स आफ इंडिया